साहित्य-सोपान

द्वितीय भाग

वर्नाक्यूलर स्कूलों की छठवीं कक्षा के लिए

सम्पादक

पं० दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल०-एल० बी०

अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

तथा

पं० गङ्गानारायण द्विवेदी

अध्यापक, कान्यकुब्ज इंटरमिडियट कालेज

लखनऊ

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

[प्रथम बार २०००] १९३३ मूल्य ॥-)

1st Edition 1930. Reprinted 1931, 1932 and 1933

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तकों के संकलन में, शिक्षा-विभाग-द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रम पर विशेष ध्यान दिया गया है। भाषा और विषय की सरलता तथा क्लिष्टता का ध्यान रख कर ही पाठों का क्रम निश्चित किया गया है। ऐसे पाठों का चुनाव किया गया है जो विद्यार्थियों की नैतिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों का विकास करते हुए उनमें साहित्यामृत पान की अभिरुचि और लगन उत्पन्न कर दें। शुष्क विषयों के पाठ भी ऐसी मनोरञ्जक भाषा में दिये गये हैं कि विद्यार्थी उन्हें चाव से पढ़ कर विषय के ज्ञान को हृदयङ्गम कर लें।

हिन्दी-संसार में जो जो कवि तथा लेखक अपनी अपनी भाषा-शैली के आचार्य माने जाते हैं, तथा जिनकी कृतियाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक ख़ास देदीप्यमान अध्याय हैं, उन सब कवियों की कृतियाँ यथासाध्य इन पुस्तकों में देने की चेष्टा की गई है। ये नमूने ऐसे हैं, कि जिनको पढ़ कर विद्यार्थियों के हृदय में उन महाकवियों और सिद्धहस्त लेखकों के ग्रंथों के पढ़ने की अभिरुचि स्वतः उत्पन्न होगी। विषय की उपयोगिता, तथा विद्यार्थियों का आगामी जीवन आधुनिक साहित्य से ही अधिक सम्बन्धित रहता है, इस विचार को ध्यान में रख कर नवीन कवि और लेखकों की कृतियाँ भी इस संग्रह में सन्निवेशित की गई हैं।

प्रत्येक पाठ के अन्त में थोड़े थोड़े 'अभ्यास' ऐसे दिये गए हैं कि यदि विद्यार्थीगण मनोयोग-पूर्वक इन अभ्यासों को करेंगे

तो पाठ का आशय समझने के अतिरिक्त उनमें प्रबन्ध-रचना, व्याकरण के प्रयोग और शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनके मूल रूप ज्ञात करने की शक्ति की वृद्धि अवश्य होगी।

प्रत्येक पुस्तक के अन्त में दो दो परिशिष्ट दिये गये हैं जिनमें से एक तो "पाठसहायक बातों" का है, जिसमें पाठों में आये हुए कठिन शब्दों के अर्थ, व्युत्पत्ति, कहावतों तथा मुहावरों के भावार्थ और अन्तर्कथायें आदि पाठसहायक बातों का समावेश है जिनकी सहायता से विद्यार्थी क्लिष्ट पाठों के समझने में पूर्ण समर्थ होंगे।

दूसरे परिशिष्ट में उन कवियों तथा लेखकों के संक्षिप्त परिचय हैं जिनकी कृतियाँ इन पुस्तकों में दी गई हैं।

किन्तु इन सब विशेषताओं और परिश्रम का फल तभी सफल हो सकता है जब कि हमारे अध्यापकबन्धु भी अपना कर्तव्य उत्साह और लगन के साथ सम्पादन करें। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर हम साहित्य-शिक्षा के कुछ मोटे मोटे नियम नीचे लिखते हैं कि जो साहित्य-शिक्षा देने में उनकी यथेष्ट सहायता अवश्य करेंगे।

(१) अध्यापकों के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह जिस विषय का ज्ञानामृत सरल और सुकुमार बच्चों को पिलाना चाहते हैं, पहले वह स्वयम् उसको पीकर मत्त हो जावें; तब विद्यार्थियों को भी उसी प्रकार मत्त बनाने की चेष्टा करें. अर्थात् जो पाठ विद्यार्थियों को पढ़ाना है, उसकी बारीकियाँ, उसकी विशेषतायें पहले स्वयम् विचार लें और यह भी सोच लें कि इन बारीकियों और विशेषताओं को हम विद्यार्थियों के कोमल हृदय पटल पर किस प्रकार अंकित करेंगे, तब पाठ पढ़ाना आरम्भ करें।

(२) पाठ आरम्भ करने के पूर्व पाठ की 'भूमिका' (अर्थात् वह बाह्यज्ञान जिसको सहायता पा जाने से विद्यार्थियों को पाठ के समझने में सरलता हो) विद्यार्थियों को अवश्य बतला देना चाहिये।

(३) पाठ को इतना मनोरञ्जक बना लेना चाहिए कि विद्यार्थियों का ध्यान पाठ की ओर उसी प्रकार आकृष्ट रहे जैसे मक्खी का मिठाई में अथवा बक का मछली में।

(४) पाठ का समय इतना ही रखना चाहिये कि जितनी देर विद्यार्थी अपना ध्यान सम्यक् रीति से पाठ की ओर लगा सकें।

(५) पाठ पढ़ाते समय "पठन-शैली" (पढ़ने का ढंग) पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि फटी मृदग या ढोलक तथा टूटे हुए तारों वाली वीणा का स्वर किसी के कानों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता, तथा ऐसा स्वर हृदय को भी प्रभावित नहीं कर सकता है। इसी प्रकार अनियमित रूप से पढ़ने का प्रभाव न तो पढ़ने वाले पर होता है और न सुनने वाले पर। इस लिये अध्यापक को पहले स्वयम् स्वर, विराम आदि का ध्यान रख कर प्रभावोत्पादक रीति से पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए; फिर उसी प्रकार विद्यार्थियों से पढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से अध्यापक और विद्यार्थी पाठों के समझाने और समझने में आशातीत लाभ प्राप्त करेंगे।

(६) एक बार नियमपूर्वक पढ़ा लेने के बाद फिर शब्दार्थ, मुहावरे और कहावतों के समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, यह बातें व्युत्पत्ति और उदाहरणों के द्वारा विद्यार्थियों को समझ में शीघ्र आ जाती हैं।

(७) पाठ्य-पुस्तक पढ़ाने के साथ ही व्याकरण-सम्बन्धी प्रश्न करना और समझाना विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(८) पद्यों के अर्थ, अन्वय के अनुसार कराने का अभ्यास कराना चाहिये, और गद्य-खंडों को अपनी भाषा में स्पष्ट रीति से लिखवा कर समझाने का प्रयत्न कराना भी ज़रूरी है।

(९) जिन बातों के स्मरण रखने में विद्यार्थी बारम्बार भूल करते हैं उनका अभ्यास ख़ूब कस कर कराना चाहिये।

(१०) पाठों में दिए हुए अभ्यासों का अभ्यास अध्यापक महाशय को ध्यानपूर्वक करना चाहिए और हर पन्द्रहवें दिन पढ़ाये हुए पाठों के अभ्यासों से कुछ प्रश्न चुन कर तथा कुछ अपने मिला कर परीक्षा लेनी चाहिये।

प्रयाग
२०—८—३०

दयाशंकर दुबे
गङ्गानारायण द्विवेदी

द्वितीय भाग

विषय-सूची

साहित्य-सोपान

द्वितीय भाग

१—प्रभु-प्रार्थना

जय जय जय जगदीश ! दीन जन के रखवारे ।
जय जय करुणा-सिन्धु परम प्रिय पिता हमारे ॥
जय अनाथ के नाथ ! हाथ गहि राखन हारे ।
जय निर्धन के धन निर्बल के बल अति प्यारे ॥
जय जयति सुदर्शन-चक्रधर, सकल भक्त-भव-भय-हरण ।
जय दीन-दयालु दयानिधे, रमा-रमण, अशरण-शरण ॥ १ ॥
तव महिमा, हे महामहिम ! नहिं जाय बखानी ।
सेस सारदा आदि थके, सुर मुनि ऋषि ज्ञानी ॥
'नेति नेति' कह वेद, भेद कछु जात न जान्यो ।
अगम, अगोचर, अजर, अकथ, सब विधि सों मान्यो ॥

हम मतिमन्द गँवार तदपि दुःसाहस करके।
कहन चहन कछु अहा ! चपल रसना यह फरके॥ २॥

ज्यों नृप, कीरति-कुशल-बन्दि जन के आकृत नित।
अर्थ हीन, बे मेल, कीर-रव सुनत मुदित चित॥
वेद विदित ! गन्धर्व गेय ज्यों विनय हमारी।
यह निहचै जिय माहिं, लागि है तुम कहँ प्यारी॥

तोसों दयानिधान ! बात निज जिय की भाखैं।
जदपि तिहारे जोग पास कछु पूँजि न राखैं॥ ३॥

यह मुख, कब यहि जोग, लेइ जो नाम तिहारो।
हाड़ मांस कफ चाम आदि को बन्यो पिटारो॥
परनिन्दा को धाम अहो ! का कहें जुबानी।
यह रसना रस-हीन, कुवच-विष सों लपटानो॥

महा अपावन बदन कहाँ कहँ नाम पवित्तर।
अति रमनीक, सुचारु सुधा-सम सुखद प्रीतिकर॥ ४॥

हव्य कव्य के हेतु धृष्ट कूकर ज्यों दौरत।
तुव गुण वर्णन काज चित्त नेमन कहँ टारत॥
यद्यपि यह धृष्टता महा जो करत क्रूर मन।
तदपि आपनी ओर हेरियो क्षमा-निकेतन॥

जो हमारि करतूत ओर हरि ! नेक निहारो।
तो पुनि छन भर होय न कहुँ निरबाह हमारो॥ ५॥

अन्तर्यामी आप सकल जानत हो चित की।
तव करुणा-बल बिना बात एकहुँ नहिं हित की॥

रोगग्रस्त तन दरिद्र गेह मन अतिशय चञ्चल।
धन नाते तव नाम काम सब करहिं अमंगल॥
पै तुम क॰न सँभार चित्त हम सरिस अघिन की।
पूरत मन की आस त्रास मेटत प्रति दिन की॥ ६॥
निज ासन की करनिन कहँ देख्योहु न चाहत।
बाँह गहे की लाज नाथ इक सदा निबाहत॥
'क्षमाशील' तव नाम सुन्यो है हमने जब ते।
निडर भये, संसार माहिं, डोलत हैं तब ते॥
तुम सो स्वामी पाय मूढ़ जो औरन ध्यावें।
कल्पवृक्ष को त्यागि बबूरन पालि लगावें॥ ७॥

—माधव प्रसाद मिश्र

अभ्यास

१—परमात्मा के कौन कौन गुण हैं? उन्हें बतलाओ।

२—ईश्वर के सामने हम लोगों की क्या दशा है? उस दशा को निवारण करके हमें क्षमा देने के कारण ईश्वर का तुम कौन सा नाम रक्खोगे?

३—इस पद्य में पढ़ कर देखो कि अशुद्ध शब्द कौन कौन हैं उनके शुद्ध रूप अपनी नोटबुक में लिखो।

४—अघिन, दासन और करनिन शब्दों में 'न' लगाने का क्या अभिप्राय है? साफ़ साफ़ समझाओ।

५—निर्धन, निर्बल, सुखद, अपावन और निडर शब्दों के प्रतिकूल अर्थ वाले शब्द बतलाओ

६—नेति नेति, गेय और चक्रधर के अर्थ स्पष्ट समझाओ।

७—इस पाठ के गुण वाचक संज्ञा शब्दों के विशेष्य और विशेषण बतलाओ।

२–शिष्टाचार और सत्य

शिष्ट पुरुषों के आचार को शिष्टाचार कहते हैं। यह तो उस का व्यापक अर्थ है; किन्तु इसके प्रचलित अर्थ में भलाई के साथ एक बुरी ध्वनि भी निकला करती है। जब लोग कहते हैं कि शिष्टाचार को छोड़ कर वास्तविक बात ऐसी है अथवा शिष्टाचार के पश्चात् मुझे यह निवेदन करना है, तो उनके कथन से यह व्यञ्जित होता है कि वास्तविक बात शिष्टाचार से बाहर हो सकती है और शिष्टाचार केवल आडम्बर मात्र है। इतना मानते हुए भी जहाँ शिष्टाचार में जरा सा भी फरक पड़ा कि उनका मन मलीन हो जाता है और मन की बात को उनके भ्रूभङ्ग आदि प्रकट कर देते हैं। यदि आप को किसी ने प्रणाम न किया तो आपका क्या बिगड़ गया और यदि आप को किसी ने पूज्यवर या गुरुवर कह कर सम्बोधन कर दिया तो उसने आप को क्या दे दिया? कोई पूछ सकता है कि किसी मनुष्य के लिये आदर सूचक उत्थान देने से क्या लाभ है? यदि डाक्टर तुरन्त फीस लेकर जेब में रख ले तो वह लालची समझा जावे और यदि झूठमूठ यह कह दे कि इसकी क्या जरूरत थी? यह तो आपकी बड़ी मिहरबानी है तो वही शिष्ट समझा जाता है। यदि

अर्ज़ी में 'गरीब परवर सलामत' न लिखें तो क्या अर्ज़ी नामंज़ूर हो जावे ? यदि पत्र के सरनामे पर योग्य सेवा में न लिखें तो क्या पत्र डाक में न जा सके ? अथवा किसी को 'श्रीमान्' न कहा जावे तो क्या वह पुरुष सम्बोधित नहीं किया जा सकेगा। यदि काम करने वाला पुरुष अपने पुण्यप्रताप की प्रशंसा न करे तो क्या उसका काम न चलेगा ? यदि छोटे भाई के घर किसी लड़के या लड़की का ब्याह हो और रुपया भी वही लगावे और निमन्त्रण-पत्र को बड़े भाई के नाम से न छपवावे तो क्या ब्याह न होगा ? यदि हमारी कारगुजारी अथवा सद्गुणों को कोई प्रशंसा न करे तो उसमें बुराई क्या है ? सीधे-सादे ढंग से काम चल जाने पर भी लोग इन सब बातों को करते ही हैं। यदि किसी आदमी के मन में आपके पास बैठने की इच्छा न भी हो तो भी आपके प्रति वह ऐसा प्रकट करेगा कि वह आपके बातचीत और सहवास से बहुत ही मुग्ध है, यहाँ तक कि उठना ही नहीं चाहता। यह बात सब जानते हैं कि दूसरे मनुष्य को भी कुछ काम है, वह आप से वास्तविक प्रेम नहीं करता। लिखने को यदि 'दासानुदास' ही लिखें और बातचीत में यदि अपने को रजकण से भी तुच्छ बतलावें तो भी यदि उसने आप की बातों से ऊब कर स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब हम आप की बातों से ऊब गये तो आप को क्यों बुरा लगता है ? विद्यार्थी यदि अध्यापक के नीरस व्याख्यान से ऊब कर घड़ी की ओर देखने लगे तो वह अपने सहज भावों से इस बात को प्रकट करने के लिये

क्यों दोषी ठहराया जावे ? ये सब ऐसी बातें हैं, जिनसे आदमी को यह सहज ही प्रतीत हो जाता है कि शिष्टाचार में असत्य बातें बहुत सी शामिल हैं। परन्तु इतना होते हुए भी जब तक हम पूर्ण विगतस्पृह सन्यासी न बन जावें तब तक हम समाज के किसी न किसी प्रकार के असत्य अथवा कम से कम अनावश्यक बातों के पक्षपाती रहते ही हैं और यह भूल जाते हैं कि 'सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप' यह झूठ कहाँ तक ग्राह्य है। प्रिय-भाषण की सभी लोगों ने प्रशंसा की है। कहते हैं कि "सत्यं ब्रयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्*" यहाँ तक तो गनीमत है किन्तु यहाँ तो प्रिय असत्य बोलने और बुलवाने की ज़रूरत रहती है। क्या हमारा समाज झूठ पर चलता है। पश्चिमी शिष्टाचार झूठ के लिये बदनाम भी है। शिष्टाचार से कोई समाज शून्य नहीं है। अँगरेज़ी में हम बिना जान-पहचान वाले पुरुष को 'डियर सर' अर्थात् प्रिय महाशय और योर्स फेतफुली लिखते हैं। 'आप का विश्वासनीय' लिखने वाला लिखते समय क्या याद रखता है कि वह मेरा प्यारा है और मैं विश्वासनीय हूँ। विश्वासनीय होने की दुहाई देने की क्या आवश्यकता ?

यदि सत्य की संकुचित परिभाषा की जावे तो ये सब बातें असत्य हैं ; किन्तु विस्तृत दृष्टि से ये बातें एक प्रकार से नम्रता के भाव की द्योतक होने के कारण पुरुष के मानसिक झुकाव का परिचय देती हैं और इसी अंश में सत्य भी हैं। यदि कोई हमको

---

* सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु अप्रिय सत्य न बोलो।

सलाम करता है तो वह कुछ देता नहीं है और यह बात भी नहीं, कि प्रणाम या पालागन करने वाला वास्तविक रूप से नमन करता है। किन्तु इतना सत्य है कि वह हमको इस योग्य समझता है कि हमारे लिये हाथ उठाते अथवा उत्थान देते समय स्वयं शारीरिक कष्ट उठाना चाहता है। इसके अतिरिक्त वह हमारी जातीय सभ्यता और उदारता का परिचय देता है, कि हमारा समाज अतिथि को पूजा की दृष्टि से देखता है। हम चाहे जो कुछ हों; किन्तु हमारी सभ्यता के विधायक अवश्य नम्र और विनीत भाव रखते थे। इसके अतिरिक्त हमारा सलाम करना अथवा किसी को उत्थान देना यह भी बतलाता है कि हम इतनी उद्दण्ड प्रकृति के नहीं हैं कि अपने सामाजिक नियमों का अनुकरण न करें अथवा हम दूसरों को अपने सामने कुछ न समझें। जब लोग आपस में जय रामजी की, जय राधेश्याम अथवा जय श्रीकृष्ण कहते हैं तब वे इस बात का परिचय देते हैं कि हम सब हिन्दूसभ्यता के सूत्र में बँधे हैं। यदि कोई पुरुष आपके पास अपनी इच्छा के विरुद्ध भी दो घण्टे बैठा रहे तो वह इस बात का प्रमाण देता है कि वह आप के लिये इतना समय देने को तैयार है और कुछ कष्ट उठाने को भी तैयार है। दूसरों के लिये अपनी इच्छाओं का अवरोध करना एक प्रकार से आत्म-त्याग का अभ्यास है।

यदि यह कहा जावे कि इन बाहरी बातों से भीतरी भावों का क्या सम्बन्ध? तो हमें कहना पड़ेगा कि बाहरी बातों का

मानसिक भावों पर बहुत कुछ असर पड़ता है। मनोविज्ञान शास्त्र के आचार्यों का कहना है कि हमारे भावों का उदय बाहरी वस्तु के सम्पर्क से ही होता है। वस्तुओं के सम्पर्क से ही उसकी वेदना क्रियात्मक स्नायुओं द्वारा मन के पास पहुँचती है और फिर उस चीज़ का ज्ञान होता है। कुछ विद्वानों की सम्मति इसके विपरीत हैं, वे बाहरी चीज़ों की प्रधानता की अपेक्षा मन की प्रधानता को ही मानते हैं। यह बात विवादास्पद भले हो कि प्रधानता किसकी है। पर यह सभी स्वीकार करते हैं कि बाहरी बातों का मन पर पूरा प्रभाव पड़ता है। यदि हम झूठमूठ भी शोक का भाव बना लें तो मन में कुछ न कुछ शोक की उत्पत्ति हो ही जाती है। झूठे आँसू सच्चे आँसू भी बन जाते हैं। शोक-ग्रसित मनुष्य को भी यदि एक अच्छी जगह में पहुँचा दिया जाय तो उसका शोक कम हो जाता है। इसी प्रकार नम्रता के अभिनय से भी हृदय में नम्रता के लिये स्थान मिल जाता है। सभ्य पुरुष को स्वयं भी इस बात का ख्याल होने लगता है कि उसका बाहर भीतर एकसा हो जावे। यदि हम ऊपर से भी अच्छा व्यवहार करने लगें तो सम्भव है कि कुछ दिनों के बाद भीतर से भी अच्छा व्यवहार करने लगें। इतना अवश्य है कि ऊपरी तौर के अच्छे व्यवहार से लोग धोके में पड़ जाते हैं। मृगचर्म-परिच्छन्न व्याघ्र होना बुरा है; किन्तु यह बात शिष्टाचार के लिये लागू नहीं हो सकती।

यदि कोई ऐसी बात हो जिसे स्पष्ट रूप से कहना शिष्टाचार के

विरुद्ध हो तो भी शिष्टाचार की रक्षा करते हुए वह बात कही जा सकती है। अतएव यह दोष भी इस पर नहीं लगाया जा सकता। दूसरी ओर से कोई वैमनस्य हो तो इसके कम हो जाने की इसे सम्भावना है। शिष्टाचार का व्यवहार करने से आत्मा में नम्रता और शील का मान बढ़ता रहता है। इससे समाज में परस्पर प्रेम और शान्ति बढ़ती है। यदि शिष्टाचार में असत्य की मात्रा है तो कुछ वास्तविक नहीं है। आदर्श की दृष्टि से शिष्टाचार में जो असत्य की मात्रा दिखाई पड़ती है, वह वास्तविक नहीं है। क्योंकि आदर्श भी एक ऐसी मिथ्या कल्पना है जिसका कहीं मान ही नहीं होता। परन्तु ये ऐसी बातें हैं जिनका व्यवहार की दृष्टि से कुछ महत्व नहीं है। ये दोनों बातें ध्रुव तारे की भाँति पथ प्रदर्शक हो हमारे जीवन को बनाती हैं। यदि आदर्श ऊँची भावना का उदय करता है तो शिष्टाचार हम में विनय, सत्यता, विश्वास और प्रेम के भावों को बढ़ाता है और समाज में सुख और शान्ति स्थापित करता है।

—गुलाबराय

अभ्यास

१—शिष्टाचार किसे कहते हैं ?

२—शिष्टाचार में कुछ असत्य का आभास भी पाया जाता है ? यदि जाता है तो क्या ?

३—शिष्टाचार का पालन करने से क्या क्या लाभ होते हैं ?

४—भ्रूभङ्ग, दासानुदास, विवादास्पद, मृगचर्म-परिच्छन्न व्याघ्र शब्दों को समझाओ और इनका प्रयोग अपने बनाये वाक्यों में करो।

३—भारत

(१)

हे जननी, हे जनक हमारे, हे प्रिय भारत देश !
युगल नयन क्यों सजल हुये हैं, क्यों यह रूखे केश ?
क्यों मिट्टी में बैठा तू है, क्यों यह मैला वेश ?
तीस कोटि सन्तान तुझे जब, कहते अपना देश।
क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुझको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(२)

लेकर जन्म बुद्ध ने खोला, जहाँ मुक्ति का द्वार।
जिसको शीश झुकाता अब भी, है आधा संसार॥
सागर तक अशोक की छाई, कीरति जहाँ विशेष।
है जननी उनकी ही तू तो, औ उनका ही देश॥
क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुझको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(३)

जाकर किया सैन्य ने जिनके, लंका पर अधिकार।
सेतु बनाकर जिसने लाँघा, सागर अगम अपार॥
तिब्बत चीन, जपान जिन्होंने, अपने किये निवेश।
उनको माँ मिट्टी में लोटे, करके मैला वेश॥

क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुमको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(४)

जहाँ कण्ठ से तानसेन के, निकली मीठी तान।
धर्म सुधार किया शंकर ने, तुलसी ने जहँ गान॥
जहाँ प्रताप, शिवाजी जूझे, धन्य धन्य वह देश।
हम भी धन्य रक्त का उनके है हममें यदि लेश॥
क्यों तू इतना दीन हुआ है, क्या तुमको है क्लेश ?
क्यों लज्जा से सिर है नीचा, क्यों दुख का है लेश ?

(५)

मुख मण्डल को यद्यपि तेरे लिया तिमिर ने घेर।
तो भी तेरी नूतन गरिमा, चमक उठेगी फेर॥
करें कालिमा दूर अगर हम, तो मनुष्य, नहिं भेष।
हे देवी, हे देव हमारे, हे प्रिय भारत देश॥

—जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

अभ्यास

१—तीस कोटि सन्तान से क्या समझते हो ?

२—क्या तीस कोटि सन्तान वाला देश दुःखी हो सकता है, यदि हो सकता है तो क्यों ?

३—तुम्हारे देश में पैदा हुए किन किन महापुरुषों की चर्चा इस पद्य में है ? उनकी संक्षिप्त कथायें बतलाओ और स्मरण रखने के लिये अपनी नोटबुक में दर्ज करो।

४—इस कविता को पढ़ कर अपने देश के सम्बन्ध में तुम अपना क्या कर्त्तव्य निश्चित करोगे ?

४—उद्योग-धन्धे

इसमें सन्देह नहीं, कि हमें अन्न, कपास, गन्ना आदि भूमि से उत्पन्न पदार्थों की बहुत आवश्यकता होती है ; परन्तु केवल उन चीज़ों से ही हमारा सब काम नहीं चल जाता । हमें ऐसी भी बहुत सी चीज़ों की ज़रूरत होती है जिनकी खेती नहीं की जाती, या जो भूमि से उत्पन्न पदार्थों से, भिन्न भिन्न प्रकार से बनायी जाती हैं । उदाहरणार्थ हमें पहनने को वस्त्र चाहिये ; भूमि से कपास पैदा की जा सकती है, परन्तु उससे सूत के कपड़े बनाने का काम और भी बाक़ी रहेगा । तब ही हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है । इसी प्रकार जंगल में वृक्ष पैदा होते हैं ; परन्तु उनके लकड़ी के तख़्ते तैयार करने, या गोंद, लाख आदि एकत्र करने का काम और भी करना होता है । तुमने शायद यह भी सुना होगा कि सोना चाँदी लोहा ज़मीन से निकलता है, परन्तु जिस रूप में वह मिलता है, वह बहुत उपयोगी नहीं होता । उसे बड़ी होशियारी और परिश्रम से साफ़ किया जाता है ; तब उसकी आवश्यक चीज़ें बन सकती हैं ।

कच्चा और तैयार माल—इससे स्पष्ट है कि भूमि से जो चीज़ें मिलती हैं, उनमें से बहुत सी को व्यवहार में लाने के लिये हमें तरह तरह के काम करने पड़ते हैं । इन कामों को उद्योग-धन्धे का

काम कहते हैं। उद्योग-धन्धों द्वारा 'कच्चेमाल' को 'तैयार माल' बनाया जाता है। उदाहरणार्थ रूई, ऊन, तेलहन, लकड़ी, लोहा आदि कच्चा माल हैं। उद्योग-धन्धों से इनके कपड़े, तेल, कुर्सी, मेज़, औज़ार आदि बनते हैं जिन्हें तैयार कहते हैं।

खेती और उद्योग-धन्धे—ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों लोगों के रहन-सहन के ढंग में शौकीनी आती जाती है, उनकी तैयार माल की आवश्यकतायें दिनों दिन अधिक होने लगती हैं। इनका परिणाम यह होता है कि खेती का काम करने वालों की संख्या धीरे धीरे घटने लगती है और उद्योग-धन्धों में काम करने वाले बढ़ने लगते हैं। यद्यपि खेती और उद्योग-धन्धों का आपस में एक दूसरे से बहुत सम्बन्ध है; परन्तु दोनों कामों के साथ साथ उन्नति होने से ही जनता खुश हाल होती है। इनमें से किसी एक प्रकार की आजीविका के आसरे बहुत से आदमियों का नहीं रहना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से जब कभी उसकी दशा खराब होगी, तो अधिकांश जनता को कष्ट पहुँचेगा।

दस्तकारी—प्राचीन काल में, भारतवर्ष में दस्तकारियों का बहुत प्रचार था। खेती की उपज के अलावा लोगों को जिन जिन चीज़ों की ज़रूरत होती थी, उन्हें वे यहाँ बना लेते थे। उस समय यहाँ से बहुत सा बढ़िया तैयार माल विदेशों में भी बिकने जाता था। निस्सन्देह पहले दस्तकारियों के कारण भारत-वर्ष का दर्जा अन्य देशों से कहीं ऊँचा था। पर अब यह बात नहीं

रही। जब से कल-कारख़ानों की लहर चली है, भारतवर्ष बहुत पीछे रह गया, अब तो यहाँ ही बहुत सा माल विदेशों से आता है।

यह ठीक है कि हाथ से बनाया हुआ माल, मशीनों से तैयार किये हुए माल का मुक़ाबला नहीं कर सकता, बहुत मँहगा रहता है, तथापि यदि यहाँ के आदमी दस्तकारियों की ओर काफ़ी ध्यान दें तो उनकी बहुत सी ज़रूरतें यहाँ ही पूरी हो सकती हैं। और देश का बहुत सा धन विदेशों को जाने से रुक सकता है।

तुम जानते हो कि यहाँ के किसान बहुत निर्धन हैं, उन्हें खेती से जो पैदा होता है, वह प्रायः काफ़ी नहीं होता। इसके सिवाय खेती का काम साल में हर समय नहीं होता। खेती से उनका जो समय बचता है, वह बेकार जाता है। यदि वे अपने अवकाश के समय को दस्तकारी में लगावें तो उनके उस समय का भी सदुपयोग हो सकता है और उन्हें कुछ आमदनी भी हो सकती है।

भिन्न स्थानों के लिए अलग अलग दस्तकारियाँ उपयोगी हो सकती हैं। सूत कातना और कपड़ा बुनना एक ऐसा काम है जो बहुत आसानी से किया जा सकता है। इसकी हर जगह ज़रूरत भी होती है, इसको शुरू करने में तथा अन्य आवश्यकता होने पर उसे छोड़ देने में कुछ कठिनाई नहीं होती। इस लिए किसानों के लिए यह दस्तकारी विशेष रूप से उपयोगी है। सहकारी समितियों का विस्तार होने से देश की दस्तकारियों की बहुत

उन्नति हो सकती है। इन समितियों के विषय में आगे लिखा जायेगा।

कल-कारख़ाने—निदान, भारतवर्ष के आदमी दस्तकारियों की तरफ़ अधिक ध्यान दें तो बहुत लाभ हो; परन्तु इसका यह मतलब नहीं, कि देश में कल-कारख़ाने बिल्कुल हों ही नहीं। अब तो कल-कारख़ानों का ही ज़माना है, उनमें बड़ी बड़ी मशीनों द्वारा, ख़ूब बड़े पैमाने पर, भाफ या बिजली आदि की सहायता से, बहुत सी तरह तरह की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। इस ज़माने में कल-कारख़ानों से बचना बहुत मुश्किल है। हमारी ज़रूरतें बहुत बढ़ गयी हैं। ज़रूरत की चीज़ों में बहुत सी ऐसी हैं, जो मशीनों के बिना तैयार ही नहीं हो सकतीं। इसके अलावा जो चीज़ें तैयार भी हो सकती हैं, वे कल-कारख़ानों में बनी चीज़ों से कम सुन्दर और अधिक महँगी पड़ती हैं। निदान अब हर एक देश में, कुछ बड़े बड़े कारख़ानों की ज़रूरत होती है। हाँ, कारख़ानों में वही माल बनना चाहिये, जिसकी देशवासियों को वास्तव में ज़रूरत हो। फेशन, वा भोग-विलासादि की सामग्री का बहुत प्रचार होना अनुचित है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि कल-कारख़ानों में काम करने वालों की भलाई तथा स्वास्थ्यादि की रक्षा के लिये उचित क़ानून हो।

कारख़ानों का क़ानून—भारतवर्ष के बड़े बड़े नगरों में कुछ कारख़ाने खुले हुए हैं। यहाँ के कारख़ानों के क़ानून की कुछ मुख्य मुख्य बातें ये हैं :—

१—जिन कारख़ानों में मशीन से काम होता हो, और बीस या अधिक आदमी काम करते हों, उनमें यह क़ानून लागू होता है।

२—बारह वर्ष से कम उम्र वाले बालकों से कारख़ानों में काम नहीं लिया जा सकता।

३—बालकों से अधिक से अधिक छः घंटे काम लिया जा सकता है। उन्हें औसत से साढ़े पाँच घंटे में आध घंटे का अवकाश मिलना चाहिए, और उनसे लगातार चार घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता।

४—बड़ी उमर वाले, हफ़्ते में साठ घंटे से अधिक, और एक दिन में ग्यारह घंटे से अधिक, काम नहीं कर सकते।

५—स्त्रियों से तथा अठारह वर्ष से कम उमर वाले आदमियों से, जोखम के काम नहीं लिये जा सकते।

६—मशीनों के चारों तरफ़ घेरा या बाड़ लगानी चाहिए।

७—पानी, रोशनी, हवा, सफ़ाई आदि का सुप्रबन्ध रहना चाहिए।

८—काम करते समय चोट-चपेट लग जाने पर मज़दूरों को, तथा उनके काम करते हुए मर जाने पर उनके कुटुम्ब को, कुछ धन दिया जाने का प्रबन्ध किया गया है।

९—यदि कारख़ाने के मालिक इस क़ानून को तोड़ें तो उन पर ५००) तक जुर्माना हो सकता है।

इस बात की जाँच करने के लिए कि कारख़ानों में इस क़ानून के अनुसार काम हो रहा है, या नहीं सरकार की तरफ़ से कुछ निरीक्षक या इन्स्पेक्टर रहते हैं।

अभ्यास

१—उद्योग-धन्धा से तुम क्या समझते हो ? साफ़ साफ़ समझाओ।

२—कच्चा माल और पक्का माल किसे कहते हैं ? तुम्हारे देश में कौन कौन कच्चा माल पैदा होता है और विदेशों में भेजा जाता है ? उसके बदले में वहाँ से कौन सा तैयार माल तुम्हारे देश में आता है ?

३—पहले यहाँ कौन कौन सी दस्तकारियाँ होती थीं ? किसानों को खाली समय में क्या काम करना चाहिये ?

४—कारख़ानों के क़ानून की मुख्य मुख्य बातें कौन हैं ?

५—कारख़ानों में क़ानून के अनुसार काम होता है या नहीं ? इसकी जाँच करने को सरकार की तरफ़ से कौन अफ़सर होता है ?

६—शब्दार्थ लिखो—

उदाहरणार्थ, वृद्धि, दस्तकारी, ख़ुशहाल, निरीक्षक, सदुपयोग, स्वास्थ्यादि, भोग विलासादि।

५—मोहन

यह स्वार्थ-तम का परदा अब तो उठा दे मोहन !
अब आत्मत्याग रवि की आभा दिखा दे मोहन !
पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति लाली,
सुसमीर एकता की अब तो चला दे मोहन !

मृदु प्रेम की सुरभि को पहुँचा दे हर तरफ़ तू,
मन पल्लवों में आशा-बूँदे बिछा दे मोहन ?
सद्भाव पङ्कजों को अब तो ज़रा हँसा दे,
जातीयता-नलिन का मुखड़ा दिखा दे मोहन ?
द्विज वृन्द वन्दना कर तेरा सुयश सुनावें,
वैरी उलूक-गण को अब तो छका दे मोहन ?
यह द्वेष का निशाचर हमको सता रहा है,
सत्कर्म-शर से इसकी गर्दन उड़ा दे मोहन ?
आलस्य-चोर भी है पीछे पड़ा हमारे,
कर्तव्य-दण्ड से तू उसको डरा दे मोहन ?
अज्ञान-स्वप्न में है दुख दैत्य ने सताया,
सुख की लगा के चुटकी हमको जगा दे मोहन ?
चेतें, मिलें, खड़े हों, स्वत्वों को अपने चीन्हें,
मुरली को तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन ?

—बदरीनाथ भट्ट

अभ्यास

१—मोहन किसे कहते हैं ? इस पद्य में मोहन से क्या प्रार्थना की गई है ? इस पद्य को कण्ठस्थ (ज़बानी) कर लो ।

२—स्वार्थ-तम, देश-भक्ति, जातीयता, नलीन और सत्कर्म-शर में कौन कौन समास हैं ? इन शब्दों के विग्रह भी करो ।

३—मुरली की तान का क्या प्रभाव होता है ?

६—दीर्घ जीवन

अँग्रेज़ी में एक कहावत है। 'सिम्पिल लिविंग एंड हाइ थिंकिंग' जिसका अर्थ है सादा जीवन और उच्च विचार। जीवन को सुखमय बनाने के लिए इससे अधिक मूल्यवान् शिक्षा और कोई नहीं। पाश्चात्य सभ्यता का आदर्श इससे भिन्न है। सभ्यता का अर्थ यह नहीं कि आवश्यकतायें जितनी अधिक बढ़ाई जा सकें बढ़ाई जायें; किन्तु सादा जीवन और उच्च विचार है। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों का यही आदर्श था। उन लोगों का जीवन सुखमय था। अतएव इस आदर्श के ग्रहण करने से ही हम लोग दीर्घ काल तक सुखी रह सकते हैं।

एडीसन का नाम इस समय सारे संसार में प्रसिद्ध है। अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से उन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की है। उनकी अवस्था ८० वर्ष से भी अधिक है, तो भी वे कितना कार्य करते हैं उसको देखकर सबको आश्चर्य होता है। उन्होंने कार्य करने की इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त की? एडीसन के प्रपितामह, एक दीर्घजीवी मनुष्य के सरल जीवन व्यतीत करने के सरल ढङ्ग को देखकर इतना अधिक मुग्ध हो गये थे कि उन्होंने उस मनुष्य का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। वे १०२ वर्ष तक जीवित रहे। उनके पुत्र एडीसन के पितामह उसी सादगी की परिस्थिति में पालित-पोषित हुए और १०५ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। उनके ७ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से एडीसन के पिता एक थे।

सबके सब ८० वर्ष से अधिक जोवित रहे और उनमें से तीन तो शताब्दी के बहुत समीप पहुँच गये थे। एडीसन भी अपनी कार्य करने की शक्ति और आरोग्यता का मुख्य कारण सादा जीवन बतलाते हैं, जिसके संस्कार उनको उनके प्रपितामह से मिले हैं।

सादा जीवन व्यतीत करने से जीवन की अवधि लम्बी होती है, कार्य करने की शक्ति बढ़ती है और सब प्रकार जीवन आनन्द-मय बनता है। सादा जीवन से अर्थ गीता के शब्दों में 'युक्ताहार-विहार' से है, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत खाने वाले को सिद्ध होता है, और न बिलकुल न खाने वाले को तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले को और न अत्यन्त जागने वाले को ही सिद्ध होता है।

इस लिए दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए युक्ताहार-विहार अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग समझते हैं कि सादा भोजन करने तथा अपनी आवश्यक-ताओं को कम करने से जीवन के आदर्श से गिर जायेंगे वे जानबूझ कर अपने पाँवों में कुल्हाड़ी मारते हैं, अपने जीवन को छोटा बनाते हैं और जोते हुए भी आनन्द का जीवन नहीं भोगते। जो लोग बिना मिर्च-खटाई इत्यादि के भोजन नहीं करते, बिना चाय और क़हवे के शरीर में उत्तेजना का अनुभव नहीं करते, धूम्रपान के बिना नहीं रह सकते, उनके लिए दीर्घ जोवन का द्वार सदैव ही बन्द रहता है। सादा भोजन और सादा जीवन मनुष्य की आयु को १००, १२५, १५० वर्ष

तक बढ़ा सकते हैं। एक दीर्घजीवी मनुष्य के बारे में कहते हैं—

"वृद्ध टामस पार जो इँगलैंड के वेस्ट मिनिस्टर एबी नाम के गिरजा घर में विश्राम कर रहा है, १४९ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु से थोड़े दिन पहले जब डाक्टरों ने उसकी परीक्षा की तब कहते हैं कि उसकी आरोग्यता बिलकुल ठीक थी। जिस डाक्टर ने उसकी परीक्षा की उसने कहा कि कोई भी कारण नहीं है कि वह १० अथवा २० वर्ष तक और न जीवित रहे। अभाग्यवश वह राजदरबार में सम्मिलित हो गया। एक वर्ष तक इस प्रकार का जीवन व्यतीत करते ही उसकी मृत्यु हो गई। सारा जीवन उसका सादा था। न तो वह धूम्रपान करता था, न मदिरा पीता था और अधिकतर वह निरामिष भोजन करता था। राजसी भोजन ने उसको मार डाला।"

सादा जीवन व्यतीत करना अधिकतर सादा भोजन करने पर निर्भर रहता है। कहते हैं, जितने मनुष्य भोजन से मरते हैं उतना बिना भोजन के नहीं मरते। सादे भोजन से यह अर्थ नहीं कि भोजन निकृष्ट हो, अथवा उसमें शरीर के पोषण करने का अंश न हो। भोजन उत्तम होना चाहिए न कि खटाई और मिर्चों से भरा हुआ। हेनरी फोर्ड जो संसार में अपने मोटरों के कारण प्रसिद्ध हैं, कहते हैं कि हमको दीर्घजीवी बनने के लिए अच्छे भोजन की आवश्यकता है, न कि अधिक भोजन की। क़हवा, चाय, तम्बाकू, मदिरा इत्यादि हेनरी फ़ोर्ड के शब्दों में दीर्घ जीवन

प्राप्त करने में हानिकारक हैं। वे भविष्य वाणी करते हैं कि भविष्य में मनुष्य इन वस्तुओं का प्रयोग बिलकुल छोड़ देगा।

अच्छा भोजन मिलने पर यह नहीं कि चाहे जितना खा जाना चाहिये। बल्कि जितनी भूख हो अथवा जितनी पाचन-शक्ति हो उतना ही खाना चाहिए। पचने के पश्चात् जो बच जाय उसको शरीर में से चाहे जैसे हो निकाल डालना चाहिए। आरोग्य और दीर्घ जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ नियम है। एक डाक्टर कहते हैं कि "अपने पाचन-शक्ति और अपनी भूख दोनों को भले प्रकार तोल लो। इस प्रकार शरीर के अङ्ग अपना कार्य उचित रूप से करेंगे। २० घोड़े की शक्ति वाले इंजिन से ५० घोड़े की शक्ति की आशा न करो। तुम सदैव इस बात की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करो कि अच्छे भोजन में से जितना सार तुम ग्रहण कर सकते हो, करो और पश्चात् जो बच जाय उसको पूर्ण रूप से शरीर के बाहर निकाल दो। कोई इंजिन तब तक भली भाँति कार्य नहीं कर सकता जब तक उसका प्रयोग में आया हुआ वाष्प पूर्ण रूप से बाहर न निकल सके।

जब भोजन भली भाँति चबाया जाता है, तभी वह जल्दी पचता है। इस लिए भोजन जल्दी जल्दी नहीं निगल जाना चाहिए, बल्कि धीरे धीरे चबाकर खाना चाहिए। इससे भोजन शीघ्र पच जायगा। जब पच जाय तब उसके पश्चात् जो शेष रहे उसको किसी न किसी प्रकार शरीर से बाहर निकाल देना चाहिए। इसके लिए कुछ लोग चूर्ण आदि का प्रयोग करते हैं;

परन्तु उनसे प्रथम तो कुछ लाभ होता है फिर उल्टी हानि होने लगती है। इस लिए जब अपच हो गया हो अथवा पेट में कुछ मल इकट्ठा हुआ प्रतीत हो तब उसके लिए सब से उत्तम औषधि 'लंघन' अर्थात् व्रत है। दीर्घ और सुखी जीवन प्राप्त करने के लिए सब से सुन्दर और सस्ता नियम सादा जीवन व्यतीत करना है। इसमें न कुछ अधिक व्यय होता है और न किसी अस्वाभाविक आवश्यकता की अपूर्ति से दुःख। इसलिए सब लोगों को चाहिए कि सादा जीवन व्यतीत करें। सादा जीवन व्यतीत करने वाले जिन सज्जनों से मेरा परिचय है उनमें से दो के चरित बड़े रोचक हैं, उनका कुछ अंश यहाँ देने के लिए बड़ा प्रलोभन हो रहा है।

मेरे पड़ोस में एक वृद्ध पुरुष रहते हैं, जो फलित ज्योतिष पर पहले बड़ा विश्वास रखते थे। वे कहते हैं कि एक ज्योतिषी ने अधिक से अधिक मेरी आयु ५४ वर्ष निर्धारित की। जब ५४ वर्ष की आयु हो गई तब उन्होंने अपना जन्मपत्र एक दूसरे ज्योतिषी को दिखलाया। उसने उनकी आयु ५८ वर्ष से अधिक नहीं निश्चय की। इसी प्रकार एक और ६२ वर्ष। परन्तु ये सज्जन अब ६६ वर्ष की आयु भोग रहे हैं। उनकी सारी इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य उचित रूप से कर रही हैं। उनका भोजन प्रति दिन दो सेर गाय का दूध, प्रातःकाल ४, ५ रोटियाँ और सायंकाल ४ रोटियाँ हैं। अपनी इस उत्तम आरोग्यता का कारण वे बतलाते हैं कि उन्होंने कभी मिर्च, तेल, खटाई और गुड़ नहीं खाया। धूम्रपान इत्यादि तो उनके पास तक नहीं फटकता। यही कारण

है कि वे प्रीति-भोजों तक में नहीं सम्मिलित होते। समय पर भोजन करते हैं। अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करने ही से उन्होंने ऐसी सुन्दर आरोग्यता प्राप्त की है।

एक और ऐसे ही दीर्घजीवी सज्जन हैं, जो इस समय ८५ वर्ष के हैं। वे अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं, समाचार-पत्र पढ़ लेते हैं और मील डेढ़ मील टहल भी आते हैं। वे भी मिर्च, तेल, खटाई इत्यादि का प्रयोग नहीं करते। अन्न के अतिरिक्त १½ सेर दूध पचा लेते हैं। वे आरोग्यता के लिए एक मन्त्र बतलाते हैं, वह यह कि 'सर्वरोगे मलाश्रये'। इस लिए जिस प्रकार हो, शरीर के भीतर से मल को निकाल देना चाहिए। मल को दूर करने के लिए वे एक ऐसी ओषधि का प्रयोग करते हैं जो न तो पृथ्वी में उत्पन्न होती है न आकाश में, न उसमें कोई गुण है और न उसका कोई आकार। वह ओषधि उपवास है।

इस लिए सादा जीवन और उच्च विचार ही मनुष्य को दीर्घ जीवी और सुखी बना सकते हैं।

—चक्खन लाल गर्ग

अभ्यास

१—बहुत दिन जीना तुमको पसन्द है? यदि पसन्द है तो अपना जीवन कैसा बनाओगे? किन किन वस्तुओं को परित्याग कर दोगे? दीर्घजीवी और सुखी रहने का मूलमन्त्र क्या है?

२—सादे जीवन से तुम क्या समझते हो?

३—युक्ताहार-विहार का क्या आशय है?

७—प्रशस्त-पाठ

शुभ सत्य सनातन धर्म वही
जिसमें मत पन्थ अनेक नहीं।
बल-वर्द्धक वेद वही जिस में
उपदेश अनर्थक एक नहीं॥
सुख-मूल समाधि वही जिसमें
व्रत-बन्धन की कुछ टेक नहीं।
कवि शङ्कर बुद्धि विशुद्ध वही
जिस के मन में अविवेक नहीं॥ १॥

गुरु गौरव-हीन कुचाल चलें
मत-भेद प्रचार प्रपञ्च रचें।
दिन रात मनो मुख मूढ़ लड़ें
चहु ओर घने घमसान मचें॥
व्रत-साधन के मिस पाप करें
हठ छोड़ न हाय लबार लचें।
कवि शङ्कर मोह-महासुर से
विरले जन पाय विवेक बचें॥ २॥

तन सुन्दर रोग-विहीन रहै
मन त्याग उमंग उदास न हो।
रसना पर धर्म-प्रसङ्ग बसें
नर-मण्डल में उपवास न हो॥

धन की महिमा भरपूर मिले
रस-रङ्ग वियुक्त विलास न हो।
कवि शङ्कर ये सब सङ्कट हैं
सुखदा प्रतिभा यदि पास न हो॥ ३॥

निशि वासर भोग विलास किये
रस रंग भरे सब साज बने।
सिर धार किरीट कृपाण गही
अवनी भर के अधिराज बने॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहा
अविरुद्ध अनेक समाज बने।
कवि शङ्कर वैभव ज्ञान बिना
भव सागर के न जहाज बनें॥ ४॥

कब कौन अगाध पयोनिधि के
उस पार गया जलयान बिना।
मिल प्राण अमान उदान रहैं
न समान विमिश्रित व्यान बिना॥
कहिए ध्रुव ध्येय मिला किसको,
अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना।
कवि शङ्कर मुक्ति मिली न कहीं।
सुखमूल विवेकज ज्ञान बिना॥ ५॥

—नाथूराम शङ्कर शर्मा

अभ्यास

१—२, ३, ४, ५, छन्दों के अर्थ लिखो।

२—इन शब्दों के अर्थ लिखो :—

अपान, उदान, विवेकज, जलयान, रस-वियुक्त, उपहास, कृपाण, प्रतिभा, लबार, प्रसार।

३—इन समासों के नाम लिखो :—

बल-बर्द्धक, व्रत-बन्धन, सुख-मूल, रोग-विहीन, गौरव-हीन, रस-रङ्ग, वियुक्त।

४—कौन कौन से गुण धारण करने से मनुष्य भवसागर के पार जा सकता है? किन दुर्गुणों से बचना चाहिए?

८—अमरकण्टक

भारत की नदियों में से सात बहुत प्रसिद्ध हैं—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्ध और कावेरी। इसीसे धार्मिक हिन्दू, स्नान करते समय यह श्लोक पढ़ते और इन सभी नदियों के जल का स्मरण या आवाहन करते हैं—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्म्मदे सिन्धु-कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

इनमें से सरस्वती का लोप हो गया। बाक़ी छः नदियाँ अब तक विद्यमान हैं और पूर्ववत् ही पवित्र मानी जाती हैं।

इस तरह, उत्तरी-भारत में, गङ्गा और यमुना के सदृश नर्मदा की भी बड़ी महिमा है। साधु-जन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। वे

उसके उद्गम-स्थान से चलते और जहाँ पर वह समुद्र में गिरती है वहाँ तक चले जाते हैं। वहाँ से वे उसके दूसरे तट से प्रदक्षिणा करते हुए फिर उसके उद्गम-स्थान, अर्थात् अमरकण्टक, को लौट आते हैं।

नर्म्मदा बहुत बड़ी नदी है। वह भारत को दो भागों में बाँटती है। वह उसके प्रायः बीचो बीच में है। उसके तट पर कई नगर और कितने ही रमणीक स्थान, घाट और मन्दिर हैं। घाटों में भेड़ाघाट बहुत प्रसिद्ध है। नर्मदा के ब्राह्मण या ब्रह्माण्ड-घाट पर एक बहुत बड़ा मेला भी लगता है। यह नदी अमरकण्टक नामक पार्वत्य प्रदेश से निकलती है। वही उसका उद्गम स्थान है। इस कारण वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है और हज़ारों मनुष्य वहाँ की यात्रा करते हैं। अभी तक यह स्थान धार्मिक दृष्टि ही से महत्व पूर्ण समझा जाता था। पर, जान पड़ता है, अब इसे ऐतिहासिक महत्व भी प्राप्त होने वाला है। क्योंकि कुछ समय से कुछ पुरातत्वज्ञ पण्डित, जी जान से इसे प्राचीन लङ्का द्वीप साबित करने की चेष्टा कर रहे हैं। तुलसीदास ने लिखा है :—

जो लाँघै सतयोजन सागर।
करै सो राम काज नय-नागर॥

वे समझते थे कि भारत और लङ्का के बीच के समुद्र की दूरी सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस है। पुरातत्वज्ञ इस बात को गपोड़बाज़ी बताते हैं और कहते हैं कि रामायण वाली लङ्का

इसी अमरकण्टक के पहाड़ पर कहीं बसी हुई थी। उन्होंने वहीं पर समुद्र भी ढूँढ़ निकाला है और रामायण के बन्दरों और भालुओं का भी पता लगा लिया है। यहाँ तक कि उस प्रान्त के असभ्य जङ्गली मनुष्यों की बोलियों के कुछ शब्दों तक का मिलान वाल्मीकि रामायण में आये हुए शब्दों से कर दिखाया है। नगरों, गाँवों, आश्रमों, अरण्यों और नदियों के नाम भी रामायण से ढूँढ़ ढूँढ़ कर उन्हें उधर ही अमरकण्टक के आस पास, अथवा वहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर भारतवर्ष ही में बता देने की कृपा भी उन्होंने की है। इस पुण्य-कार्य में कई पण्डित लगे हुए हैं। उन्हीं में मध्य-प्रदेश के पण्डितवर्य्य बाबू हीरालाल साहब भी हैं। आपके नाम और काम से कोई कोई पाठक भी शायद परिचित हों; आप काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के कोई बहुत बड़े कार्य-कर्तृत्व पद पर भी हैं। अस्तु, अमरकण्टक को ऐतिहासिक महत्ता मिले या न मिले, उसका संक्षिप्त परिचय ही तब तक सुन लीजिये।

बङ्गाल-नागपुर रेलवे की एक शाखा कटनी से बिलासपुर को गई है। उस पर पेंडर-रोड नामक एक स्टेशन है। उत्तरी भारत से आने वाले यात्रियों को वहीं उतरना पड़ता है। वहाँ से अमरकण्टक कोई १४ मील है। स्टेशन से अमरकण्टक तक का मार्ग है तो पहाड़ी और जङ्गली, पर कहीं कहीं हरे-भरे खेत भी देखने को मिलते हैं। हाँ, जेठ वैशाख और आषाढ़ सावन में उनके दर्शन नहीं होते। वर्षा में अलबत्ते प्रायः सर्वत्र ही हरियाली

छाई रहती है। मार्ग में कहीं कहीं साधु-सन्तों के कुटीर देखने योग्य हैं। प्राकृतिक दृश्यों का तो कहना ही क्या है। कहीं कोई नाला हहराता हुआ चला जा रहा है, कहीं पथरीली जगहों और चट्टानों से घरघराता हुआ पानी गिर रहा है, कहीं नीची जगहों में भरे हुए जलकुण्ड शोभा दे रहे हैं। ऊँचे ऊँचे जङ्गली पेड़ और सड़क के किनारे फूले हुए जंगली फूल अलग ही अपनी मनोरमता से पथिकों का चित्त चुरा लेते हैं। मार्ग में गाँव भी पड़ते हैं। उन में पथिकों के ठहरने के लिये धर्मशालाएँ भी, कहीं कहीं पर, बनी हुई हैं। एक नाले के किनारे तो आम के बड़े बड़े सैकड़ों वृत्त दूर तक चले गये हैं। मतलब यह कि कुछ दूर तक तो मार्ग बहुत ही सुहावना है। पर जहाँ से पहाड़ी की चढ़ाई शुरू होती है वहाँ से पैदल चलने वाले पथिकों को कष्ट अवश्य होता है। हाँ, सवारी होने से यात्री आराम से अमरकण्टक पहुँच सकते हैं।

अमरकण्टक रीवाँ-राज्य में है। वहाँ राज्य के कई कर्म्मचारी रहते हैं। पहले यह स्थान बड़ा दुर्गम था, पर इसकी दुर्गमता अब धीरे धीरे कम होती जाती है। वहाँ अब सड़कें तक बन गई हैं। वे यद्यपि बहुत चौड़ी नहीं; तथापि आवागमन के सुभीते के लिये बहुत काफ़ी हैं। प्रधान सड़क के दोनों ओर कितने ही अच्छे अच्छे मन्दिर हैं। व्यापारियों की दुकानें भी अनेक हैं। खाने-पीने का सब सामान वहाँ मिल जाता है। चावल तो बहुत ही अच्छा मिलाता है। घी दूध की भी कमी नहीं। अमर-

कण्टक के मन्दिरों में सायं-प्रातः दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ रहती है। जहाँ देखिये वहीं कोलाहल मच रहा है और आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है।

अमरकण्टक के आस पास बड़ा घोर जङ्गल है। परन्तु उनमें भी यत्र तत्र गोंड, भील आदि असभ्य आदमी रहते हैं। उनका रङ्ग काला-कलूटा है। वे सिर्फ एक लँगोटी पहनते हैं। और किसी कपड़े से वे सरोकार नहीं रखते।

अमरकण्टक का प्रधान पवित्र स्थान नर्म्मदा का कुण्ड और उसके पास ही सड़क पर ही नर्मदा जी का मन्दिर है। मन्दिर के सामने एक और भी प्रसिद्ध मन्दिर है। वह शिव जी का है। अपने उद्गम स्थान से निकलने के बाद नर्म्मदा का जल इसी कुण्ड में एकत्र होता है।

अमरकण्टक में देवालयों की कमी नहीं। महारानी अहल्या बाई की बनवाई हुई एक धर्मशाला भी वहाँ है। पर दुःख की बात है, वहाँ की कितनी ही इमारतें मन्दिर आदि खंडहर और उजड़ी हुई दशा में हैं। रियासत को उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये था। कम से कम जो इमारतें अब तक नहीं उजड़ीं उनकी देख भाल का प्रबन्ध यदि वह कर दे तो अमरकण्टक की महत्ता कुछ तो बनी रहे। इस ओर रियासत का ध्यान थोड़ा बहुत गया भी है। उसके प्रयत्न से अब वहाँ हर साल शिवरात्रि पर एक मेला लगने लगा है। उसमें दूर दूर से लोग आते हैं। दुकानदार भी उस समय वहाँ बाहर से पहुँचते हैं। अतएव कई रोज़ तक

खूब चहल-पहल रहती है। पेंडरा-रोड स्टेशन से अमरकण्टक तक पुलिस का पहरा रहता है और हर तरह की सवारियाँ मिलने का प्रबन्ध हो जाता है।

अमरकण्टक से कपिल-धारा ३ मील है। कोई ७० फुट ऊँचे पर्वत से नर्मदा की धारा, सीधी, वहाँ नीचे गिरती है। उसके गिरने का शब्द दूर दूर तक सुनाई पड़ता है। वह दृश्य बड़ा ही मनोहर है। उस स्थान के आस पास घोर जङ्गल है। उसमें सैकड़ों प्रकार के वन-पुष्प और लताएँ मन को मुग्ध कर लेती हैं। पास की पहाड़ी से कुछ ही दूरी पर कई छोटे छोटे गांव हैं।

कपिल धारा से कोई एक मील आगे दूध-धारा है। वहाँ पर भी नर्म्मदा जी एक ऊँची पहाड़ी से नीचे गिरती है। पर वह पहाड़ी समतल भूमि से पन्द्रह बीस ही फुट ऊँची है। अतएव नर्म्मदा के प्रपात की वैसी गरज वहाँ नहीं जैसी कि कपिल-धारा में सुनने को मिलती है।

अमरकण्टक के पहाड़ों से नर्म्मदा ही नहीं निकलती सोन-भद्र नद भी उन्हीं से निकलता है। नर्म्मदा के उद्गम स्थान से वह उत्तर की ओर है। कोई ३ मील चलने पर मनुष्य वहाँ पहुँचता है। वहाँ अगल-बगल पहाड़ों की दे। चोटियाँ हैं। बीच की जगह खाली है। वह एक घाटी सी मालूम होती है। इन्हीं पहाड़ियों में से एक के ऊपर से सोन की धारा नीचे गिरती है। और मौसमों में तो नहीं, पर वर्षा में यह धारा बड़ी मोटी हो जाती

है और हहराती हुई नीचे आती है। उस समय उसका घनघोर शब्द बड़ा भयङ्कर मालूम होता है।

सोनभद्र से लगभग एक मील की दूरी पर एक अच्छा बग़ीचा है। उसे लोग नर्म्मदा जी की फुलवारी कहते हैं। इसी बग़ीचे से नर्म्मदा जी के मन्दिर में पूजा के लिये फूल जाया करते हैं। इसमें गुले-बकावली के अनेक वृक्ष हैं। फूल पीला होता है और सुनते हैं, नेत्र रोग के लिये लाभदायक है। ये फूल शायद अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते। पाठकों ने गुले-बकावली का किस्सा शायद पढ़ा होगा। कहा जाता है कि जिस दुरधिगम्य स्थानों और गुफाओं का वर्णन उसमें है वे यहीं पर थीं।

अमरकण्टक पार्वत्य प्रदेश है। वहाँ गरमी कम पड़ती है। अनेक प्राकृतिक दृश्य भी वहाँ देखने लायक हैं। बरसात के दिनों में वहाँ तक पहुँचने में कुछ कष्ट अवश्य होता है, क्योंकि नदी नाले बहुत बढ़ जाते हैं, पर और ऋतुओं में दर्शक आसानी से वहाँ पहुँच सकते हैं और वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों से अपना बहुत कुछ मनोरञ्जन कर सकते हैं।

—चक्रपाणि चतुर्वेदी

अभ्यास

१—अमरकण्टक का वर्णन करो।

२—शब्दार्थ लिखो—

यत्र-तत्र, दुरधिगम्य, पुरातत्वज्ञ, पण्डितवर्य्य, उद्गम-स्थान, मनोरञ्जन।

३—अमरकण्टक के पास जो घोर जङ्गल है उसमें कौन-सी जाति के लोग रहते हैं ? उनका वर्ण कैसा होता है ? और उनका पहनावा कैसा होता है ?

४—अमरकण्टक के दर्शनीय स्थान कौन कौन हैं ? नर्मदा जी की फुलवारी में कौन प्रसिद्ध पुष्प होता है उसका क्या गुण है ?

५—नर्मदा किस रियासत में है ? पुरातत्वज्ञ वहाँ क्या नई खोज कर रहे हैं ? अमरकण्टक का मार्ग नक़्शे में देखो ?

६—अमरकण्टक जाते हुए जो पहाड़ी दृश्य देखने में आते हैं उनका वर्णन करो।

९—अनाथ

(१)

देख कर ही है इन्हें होती बड़ी मन में व्यथा,
क्या न हैं ये देहधारी करुण-रस ही सर्वथा ?
हाय ! भर आता हृदय है और रुकता है गला,
इन अनाथों की कथा कैसे कहे कोई भला ?

(२)

इन अभागों के अभागे दृग भरे हैं नीर से,
वे दयामय के हृदय में चुभ रहे हैं तीर से ?
हो रहे चञ्चल व्यथा से ज्यों सरोज समीर से,
हैं किसी को खोजते मानों सतृष्ण अधीर से ?

(३)

जो दिलाती याद है इनके मरे मा-बाप की,
छाप सी इनके मलिन मुख पर लगी सन्ताप की।

है बहुत ही साफ़ उसको देख सकते हैं सभी,
चन्द्रमा की कालिमा भी क्या भला छिपती कभी ?

(४)

चल बसे माता पिता इन बालकों को छोड़ के,
तज दिया इनको सभी ने प्रेम-बन्धन तोड़ के।
किन्तु ये दुख भोगने को हाय ! जीते रह गये,
निज दृगों के आँसुओं को नित्य पीते रह गये।

(५)

है न कुछ अवलम्ब इनको विश्व-पारावार में,
बह रहे हैं तृण-सदृश उसकी प्रखरतर धार में ?
दुध-मुँहे बच्चे कहाँ ये और वे लहरें कहाँ,
इस दशा में ये न जाने जी रहे कैसे यहाँ ?

(६)

ये अभागे जन्म से ही दुःख के पाले पड़े,
देखिये सब अङ्ग इनके क्या न हैं काले पड़े ?
हैं भटकते रात-दिन हैं पैर में छाले पड़े,
हाय ! तो भी अन्न के रहते इन्हें लाले पड़े ?

(७)

निपट नन्हें अङ्ग इनके सुमन से सुकुमार हैं,
हैं निरे नादान ये सब तौर से लाचार हैं,
किन्तु इनके शीश पर गिरि-तुल्य दुख का भार है।
दुष्ट निर्दय दैव को धिक्कार है, धिक्कार है॥

(८)

है नसीब हुआ कभी न इन्हें खुशी से खेलना,
बालपन में ही पड़ा इनको विषय दुख झेलना।
अधखिले ही जब रहे सुन्दर सुमन कोमल निरे,
हाय ! उन पर व्योम से आकर तभी ओले गिरे।

(९)

मौज से खाना थिरकना कूदना हँसना सदा,
इन अभागों को कभी इस जन्म में न रहा बदा।
लोग कहते हैं किसे सुख, यह न इनको ज्ञात है,
पेट का ही पीटना इनके लिये दिन रात है?

(१०)

सह चुके हैं क्लेश ये अब तक कठिन जितने यहाँ,
दिवस इनकी आयु के बीते अभी उतने कहाँ?
है नहीं जाना इन्होंने निज पिता के प्यार को,
प्रेम से परिपूर्ण माता के मृदुल व्यवहार को?

(११)

है मिला बालक-सुलभ-सुख का न इनको लेश भी,
हाय ! इनके क्लेश को है कह न सकता शेष भी।
क्या भला है भेद इनमें और उन मृदु फूल में,
जो लता की गोद से गिर कर पड़े हैं धूल में?

(१२)

और बच्चे हैं मुदित मा के प्रचुर चुमकार से,
हैं दुखी निष्ठुर जनों के ये निठुर दुतकार से।

हर्ष से हँस कर उधर वे पीटते हैं तालियाँ।
पीटते निज माथ हैं खाकर इधर वे गालियाँ॥

(१३)

क्या कभी मिलता इन्हें भर पेट खाने के लिये,
छटपटाते प्राण इनके त्राण पाने के लिये।
ये भले ही कुछ करें निज दुख हटाने के लिये,
पर न यह भूलें कभी वे हैं न जाने के लिये॥

(१४)

पड़ रहा जाड़ा कड़ा है, ये निपट पटहीन हैं,
वस्त्र लायें ये कहाँ से हाय! ये अति दीन हैं?
पवन-कम्पित मृदुलता सी कँप रही सब देह है,
लें शरण जाकर कहाँ इनके न कोई गेह है॥

(१५)

यह कठोर मही इन्हें है सेज सोने के लिये,
हाय! सोने के लिए है या कि रोने के लिये।
लोटने से धूल पर मिलती नहीं क्या शान्ति है,
शान्ति तो मिलती नहीं क्या दूर होती शान्ति है?

(१६)

क्या इन्हें लू की लपट है, क्या कड़ी बरसात है,
क्या शिशिर का शीत इनको क्या भयङ्कर रात है।
हों न क्यों ओले बरसते पर करें ये हाय! क्या?
भीख माँगे जो न जाकर तो मरें निरुपाय क्या?

(१७)

माँगने में भीख इनको क्या भला अब लाज है,
याचना को छोड़ इनको क्या सहारा आज है ?
आत्म-गौरव-भाव इनके कर चुका विधि चूर है,
किन्तु तो भी वह न इनके क्लेश करता दूर है ॥

(१८)

जब अनाथ अभाग्यवश होता कभी बीमार है,
तब कहे किससे, किसे उससे तनिक भी प्यार है ?
कौन औषधि दे दया कर जो उसे दरकार है,
रोग अपना आप ही करता उचित उपचार है ॥

(१९)

क्या न इनको देखकर दृग फेर लेते हैं सभी,
दृष्टि इन पर प्रेम की क्या डालता कोई कभी ?
सान्त्वना भी शोक में देता इन्हें कोई नहीं ॥
है न इनके आँसुओं का पोंछने वाला कहीं ॥

(२०)

रह गया कोई न इनका ये किसे अपना कहें ?
अब भला संसार में किसके सहारे ये रहें ?
तज चुके सब साथ इनका ये नितान्त अनाथ हैं,
है भरोसा बस उन्हीं का जो सभी के नाथ हैं ॥

—गोपाल शरण सिंह

अभ्यास

१—अनाथों के लिये तुम्हारे यहाँ क्या प्रबन्ध किया गया है ?

२—शब्दार्थ लिखो—

श्रान्त, पवन-कम्पित, सतृष्ण, सुमन, गिरी-तुल्य, सरोज, समीर, प्रखरतर ।

३—समासों के नाम लिखो—

पवन-कम्पित, बालक-सुलभ-सुख, रात-दिन, माता-पिता ।

४—वाक्यों में प्रयोग करो—

विषम, कालिमा, त्राण, निरुपाय, नितान्त ।

५—अपनी दशा से अनाथों की दशा की तुलना करो, फिर सोचो कि अनाथों के साथ तुम्हारा क्या कर्तव्य है ?

१०—सम्भाषण में शिष्टाचार

मनुष्य की विद्या, बुद्धि, और स्वभाव का पता उसकी बात-चीत से लग जाता है, इसलिये उसे अपने विचार प्रकट करने के लिये बातचीत में बड़ी सावधानी रखना चाहिये। सम्भाषण में सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बात में कर्ष बढ़ आती है। यथार्थ में मनुष्य की बातचीत ही उनके कार्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है—' कहैं कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूल में ।' जिसकी

बात-चीत में सभ्यता वा शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बात-चीत करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम' 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिये। इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिये या अधिक घनिष्ठ परिचय वाले समवयस्क के लिए, और श्रीमान् का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावों के लिए किया जाय। बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़ कर और किसी के लिये 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिए केवल सिर हिलाना असभ्यता है। उसके बदले 'जी हाँ' या 'जी' नहीं कहने की बड़ी आवश्यकता है। बातचीत इस प्रकार रुक रुक कर न की जाय कि जिससे श्रोता को उकताहट मालूम पड़ने लगे। बातचीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बोलने वाला बहुत देर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे, जिससे दूसरों को बोलने का अवसर न मिले और वे बोलने वाले की बक बक से ऊब न जाय। बातचीत बहुधा संवाद के रूप में होनी चाहिए, जिससे श्रोता और वक्ता—दोनों का अनुराग सम्भाषण में बना रहे।

सभ्य वार्तालाप में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि किसी के जी को दुखाने वाली कोई बात न कही जाय। सम्भाषण

को, जहाँ तक हो सके, कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग्य, उपालम्भ और अश्लीलता से मुक्त रखना चाहिए। अधिकार की अहम्मन्यता में भी किसी के लिये कटु शब्द का प्रयोग करना अपने को असभ्य सिद्ध करना है। किसी नये व्यक्ति के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिये बातचीत में उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो किसी की जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछा जाय। किसी से कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुन कर भी उसका उत्तर न दें तो उसके लिए उनसे अधिक आग्रह न करना चाहिये। यदि ऐसा जान पड़े कि वे उत्तर देना भूल गये हैं तो अवश्य ही नम्रता-पूर्वक दूसरी बार उनसे प्रश्न किया जाय।

बात-चीत में आत्म-प्रशंसा को यथा-सम्भव दूर रखना चाहिए। साथ ही बातचीत का ढंग भी ऐसा न हो कि श्रोता को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बात-चीत में विनोद बहुत ही आनन्द लाता है ; परन्तु सदैव हँसी-ठट्ठा करने की टेव वक्ता और श्रोता दोनों के लिए हानिकारक है। सम्भाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जाय क्योंकि इसमें बहुधा अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कवियों के छोटे छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे बोलचाल में सरलता और

प्रामाणिकता आजाती है। तथापि 'अति सब की बुरी होती है'।

यदि कोई दो-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषय पर बात-चीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बात-चीत करने लगना अनुचित है। कभी कभी किसी किसी मनुष्य को चुपचाप देख कर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई मनोरञ्जक बात या विषय छेड़ कर उनकी इच्छा-पूर्ति करे।

किसी की असम्भव बातें सुन कर भी उसकी हाँ में हाँ मिलाना चापलूसी है और न्याय-सङ्गत बातें सुन कर भी उनका खण्डन करना दुराग्रह है। लोगों को इन दोषों से बचना चाहिए। यद्यपि वार्तालाप में दूसरे के मत का समर्थन करने से अथवा उसकी प्रशंसा में दो-चार शब्द कहने में चापलूसी का कुछ आभास रहता है; तथापि इतनी 'चापलूसी' के बिना सम्भाषण नीरस और अप्रिय हो जाता है।

इसी प्रकार अपने मत का समर्थन करने और दूसरे के मत का खण्डन करने में कुछ न कुछ दुराग्रह झलकता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाज में क्षन्तव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है और पर-निन्दक को सभ्य तथा शिक्षित लोग बहुधा अनादर की दृष्टि से देखते हैं। विद्वानों के समाज में मत-भेद होने के

अनेक कारण उपस्थित होते हैं, इसलिये जब किसी के मत का खण्डन करने का अवसर आवे तब बहुत ही नम्रता-पूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मत का खण्डन करना चाहिये। खण्डन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मत वाले को बुरा न लगे। बातचीत में क्रोध के आवेश को रोकना चाहिये और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण ही उचित है। वचनों का उत्तर व्यङ्ग्य से ही देना नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं हैं; तथापि शिष्टाचार उन्हें कम से कम एक बार सहन करने का परामर्श देता है।

जिससे बातचीत की जाती है उसकी योग्यता का विचार करके वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर सम्भाषण किया जाय। नवयुवकों से वेदान्त की चर्चा करना और वयोवृद्ध लोगों को शृङ्गार रस की विशेषतायें बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से (विशेषकर दूसरे घर की स्त्री से) बात-चीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही ज़ोर ज़ोर से बात न करना चाहिये। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिये हानिकारक है और इससे उसके रोग की भयङ्करता का उल्लेख करना रोग से अधिक भयानक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की निन्दा की जा रही हो तो निन्दक को नम्रता-पूर्वक इस कार्य से विरत

कर देना चाहिये। और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव निन्दक पर न पड़े तो किसी बहाने उसके पास से उठ कर चले आना उचित है। इससे उसे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसन्नता का कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरे की निन्दा नहीं करता उसके सामने दूसरों को भी ऐसी निन्दा करने का साहस बहुधा नहीं होता।

किसी सभा-समाज या जमाव में अपने मित्र अथवा परि-चित्त व्यक्ति से ऐसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिये जिन्हें दूसरे न समझ सकें अथवा जो उन्हें विचित्र जान पड़े। ऐसे अवसर पर किसी विशेष विषय की अपने ही धन्धे या नौकरी की बातें करने से दूसरों लोगों को अरुचि उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष अथवा गहन विषय पर बहुत समय तक सम्भाषण करने की आवश्यकता न हो तो थोड़े थोड़े समय के अन्तर पर विषय को बदल देना अनुचित न होगा।

बातचीत करते समय भाषा की उपयोगिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कई लोग साधारण पढ़े लिखे लोगों के साथ बातचीत करने में, 'विचार-स्वातन्त्र्य', 'व्यक्तिगत आक्षेप', 'वैयक्तिक धारणा' आदि शब्दों का उपयोग करते हैं, जो साधारण पढ़े लिखे लोगों की समझ में नहीं आ सकते। इसी प्रकार पण्डितों के समाज में मनुष्य के लिए 'मानस', माता के लिये

'महतारी', पिता के लिये 'बाप' और भोजन के लिए 'खाना' कहना असङ्गत है।

हिन्दी-भाषी लोग बहुधा श, ष और क्ष का अशुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रसिद्ध हैं। इसलिए शिक्षित लोगों को इस उच्चारण-दोष से बचना चाहिये। कई 'उर्दूदाँ' सज्जन अपनी बात-चीत में सिर को 'सर' आँगन को 'सहन', बजाज को 'बज़्ज़ाज' और कलम को 'क़लम' कह कर अपनी भाषा-विज्ञता का परिचय देते हैं, जो शिक्षित हिन्दी-भाषी-समाज में उपहासयोग्य समझा जाता है। हमारे कई हिन्दी-भाषी भाई उर्दू-उच्चारण-शुद्धता के मोह में पड़ कर, हिन्दी के 'ज़'-वाले शब्दों में 'ज' की अशुद्ध झड़ी लगाते हैं और कदाचित् उसे अपनी उर्दूदानी का प्रमाण समझते हैं। पर यह उनकी भूल है। क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दोनों भाषा-भाषियों द्वारा उपहास्यमान होता है। हमने उर्दू न जानने वाले एक वकील महाशय को 'ज़ायदाद' मज़बूर' 'हर्ज़' और 'ताज़ कहते सुना है। कई एक महाशय तो मुझे 'ज़ल्दी' घर जाना है, कह कर वकील साहब को भी मात कर देते हैं। यद्यपि हमने उपर्युक्त वकील साहब की शिष्टता के अनुरोध से उस समय उनकी भूल नहीं बताई, पर हमें उनकी यथार्थ 'उर्दू-दानी' का पता चल गया। कई लोग भूल से हिन्दी के फ अक्षर को फ़' कहते हैं, जिसका उदाहरण उनके 'फल', 'फूल' और 'फन्दा' कहने में मिलता है।

शिष्ट भाषण में इन दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उस भाषा के ज़, फ़, क़, और ग़ का उच्चारण करने का किसी को साहस न करना चाहिये। क्योंकि इससे शिक्षित-समाज में, विशेष कर शिक्षित मुसलमानों में, हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं और दूसरी जातियों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिये सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू-शब्दों का उच्चारण हिन्दी के प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिन्दी-लिपि में (उर्दू के संसर्ग से) अक्षरों के नीचे जो बिन्दी लगाने की अनिष्ट प्रथा है उसी से उच्चारण-सम्बन्धिनी ये सब भूलें होती हैं।

मातृभाषा में बातचीत करते समय बीच बीच में अँगरेज़ी-शब्दों को मिला कर एक प्रकार की खिचड़ी-भाषा बोलने की जो दूषित प्रथा है उसका तो सर्वथा त्याग किया जाना चाहिये। भारत वर्ष में इस खिचड़ी-सम्भाषण-प्रथा का तो इतना प्रचार है कि कदाचित् ही कोई प्रान्त इसके आधिपत्य से बचा हो।

इसी प्रकार मातृभाषा में ऐसे प्रान्तीय शब्द भी न लाये जायँ जो या तो बिलकुल भद्देस हों या दूसरे प्रान्त वाले जिन्हें समझ न सकें। बिना किसी कारण के अपनी मातृभाषा को छोड़ अन्य भाषा में बातचीत करना शिष्टता के विरुद्ध है।

—कामताप्रसाद गुरु

अभ्यास

१—बातचीत करने में सावधानी रखने की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

२—चापलूसी और दुराग्रह से क्या समझते हो ?
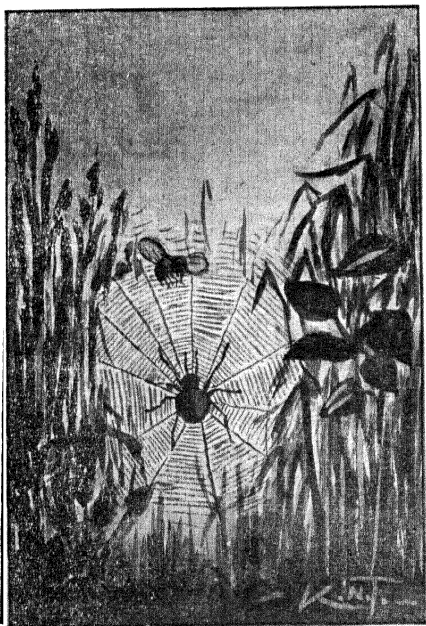
मकड़ी

३—सभ्य वार्तालाप किसे कहते हैं ?

४—कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग्य और उपालंभ से क्या समझते हो ?

५—बातचीत करते समय किन किन नियमों का ध्यान रखना चाहिये और क्यों ?

११—मकड़ी

मूर्ति यत्न की, प्रतिमा प्रण की,
सहज सखी साहस की।
ध्रुव उपासिका आदि शक्ति की,
नहीं दैव के बस की।
हम समझे, पुनि संयत मुख की,
चाह छोड़ कर यश की॥
मक्खी कहती, छाया ही है,
दैव क्रूर कर्कश की॥
प्राकृत परिकर बाँध कर,
अड़ी अटल उत्साह से।
गिर गिर कर फिर चढ़ रही,
रहे विघ्न हट राह से॥१॥
एक मात्र सुस्मृति अतीत की,
तेरी कला दिलाती।
भूत भविष्य ज्योति भारत की,
तू ही है बतलाती॥

अभ्यास

१—मकड़ी से तुमको क्या शिक्षा मिलती है ?

२—मकड़ी की कौन सी अधम बात लोगों को त्याज्य है ?

३—दूसरे पद्य का अर्थ लिखो।

४—भवपाश और मकड़ी के जाले की तुलना करो।

५—प्रभुरतिसूत्र, जालयुक्त, काल-कोठरी, सत्साहस, सुस्मृति और ध्रुव-उपासिका के समास लिखो।

१२—अलसी

असली—तीसी का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन समय में आर्यों की निवास भूमि उत्तरी ध्रुव, कास्पियन सागर और फ़ारस की खाड़ी के पश्चिम में तीसी की खेती होती थी। आर्य लोग तीसी से तेल निकालने के अलावा उसके रेशे से वस्त्र भी तैयार करते थे। संभवतः इसलिए वेदों में "क्षौम्य" नाम का उल्लेख पाया जाता है। पाणिनि ने भी "अतसि स्चुत युभा क्षुभा"—का वर्णन किया है। ये क्षौम्य वस्त्र रेशमी वस्त्रों की बनिस्बत पवित्र माने जाते थे। संस्कृत में इसे युभा के अतिरिक्त प्रतसी, उभा और अतसी बीज भी कहते हैं, परन्तु आज कल की देशी भाषाओं में इसके विविध नाम हैं, जैसे, बिहारी और राजस्थानी में तीसी, हिन्दी में अलसी, मराठी में जौस, कर्नाटकी में असगे, और तेलगू में नवल्लपगसि चेट्टू कहते हैं। अँग्रेज़ी में इसे लिनसीड और फ्लेक्ससीड कहते हैं। परन्तु, लेटिन में

अभ्यास

१—मकड़ी से तुमको क्या शिक्षा मिलती है ?

२—मकड़ी की कौन सी अधम बात लोगों को त्याज्य है ?

३—दूसरे पद्य का अर्थ लिखो।

४—भवपाश और मकड़ी के जाले की तुलना करो।

५—प्रभुरतिसूत्र, जालयुक्त, काल-कोठरी, सत्साहस, सुस्मृति और ध्रुव-उपासिका के समास लिखो।

१२—अलसी

असली—तीसी का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन समय में आर्यों की निवास भूमि उत्तरी ध्रुव, कास्पियन सागर और फ़ारस की खाड़ी के पश्चिम में तीसी की खेती होती थी। आर्य लोग तीसी से तेल निकालने के अलावा उसके रेशे से वस्त्र भी तैयार करते थे। संभवतः इसलिए वेदों में "क्षौम्य" नाम का उल्लेख पाया जाता है। पाणिनि ने भी "अतसि स्चुत युभा क्षुभा"—का वर्णन किया है। ये क्षौम्य वस्त्र रेशमी वस्त्रों की बनिस्बत पवित्र माने जाते थे। संस्कृत में इसे युभा के अतिरिक्त प्रतसी, उभा और अतसी बीज भी कहते हैं, परन्तु आज कल की देशी भाषाओं में इसके विविध नाम हैं, जैसे, बिहारी और राजस्थानी में तीसी, हिन्दी में अलसी, मराठी में जौस, कर्नाटकी में असगे, और तेलगू में नवल्लुपगसि चेट्टू कहते हैं। अँग्रेज़ी में इसे लिनसीड और फ्लेक्ससीड कहते हैं। परन्तु, लेटिन में

लीनीसेमीना. जर्मनी में लीनसेमन, फ्रांस में ग्रेंसडेलिन और स्पेन में लिनजासिमीएनटडेल लेनो कहते हैं।

तीसी के पौदे के तने सूत की तरह पतले होते हैं। इनसे अत्यन्त कोमल शाखाएँ निकलती हैं। पत्तियाँ साधारणतः कम चौड़ी और प्रायः बिना डंठल की होती हैं। पुष्प अधिकतर खुले हुए नीले रंग के होते हैं। उनके कुन्न पाँच हिस्से होते हैं।

इसलिए बीज कोष के दशपटल होते हैं। वनस्पति शास्त्र में इन बीजों को "मसूरीपत्र" बताया है। ये बीज नीले रंग से लेकर गहरे भूरे रंग तक भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। लेकिन आमतौर पर हलके भूरे रंग के होते हैं। यही व्यापारिक तीसी है। इसका पौदा वार्षिक है। बीस से चालीस इंच तक ऊँचा बढ़ता है। बीज भी एक शतांश से एक पंचमांश इंच तक लम्बे होते हैं। खेती की दृष्टि से तीसी के पौदों की कई किस्में हैं: उन में कम से कम दो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जैसे लिनम यूसी टटी सीमम, और लिनम हमाइलमिल। पहली किस्म में सब प्रकार के छोटे बीज शामिल हैं और दूसरी में बड़े बीज हैं।

तीस की खेती अरजाइनटाइन, ब्रिटिश भारत, कनाड़ा, चीन, सरबिया, मोरोक्को, रूमानिया, रूस, ट्यूनिस में बहुतायत से होती है। आस्ट्रेलिया, वेलजियम, बलगेरिया, मिस्र, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, नेदरलेण्ड, न्यूजीलेण्ड, पोलैंड, रूमानिया, स्पेन,

स्वीडन और संयुक्तराज्य में तीसी की आयात के साथ साथ उसकी पैदावार भी बढ़ रही है।

भारतवर्ष में पहले तेल और रेशा—दोनों के लिए तीसी की खेती होती थी। परन्तु रेशे का उद्योग नष्ट हो जाने से आज कल केवल तेल निकालने के लिए खेती होती है। अरजनटाइन में भी तेल के लिए खेती होती है।

यूनाइटेड स्टेट अमेरिका के उत्तरीय मैदानों की भी तीसी की पैदावार तेल के काम में आती है। पर योरोपियन देश में तेल के अतिरिक्त रेशे का उद्योग बहुत बड़ा है। इसलिए योरोप में तीसी का नाम फ्लेक्स सीड अधिक प्रचलित है।

तीसी हर किस्म की मिट्टी में बोयी जाती है। लेकिन मार और दुमट में बहुत अच्छी उपज होती है। जिस आबहवा और मिट्टी में गेहूँ पैदा होता है वही इसके लिए अच्छी है। अन्य देशों में तो तीसी की खेती किसी दूसरी फ़सल के साथ नहीं होती है। परन्तु, भारतवर्ष में इसे गेहूँ, चना, मटर, जौ और मसूर के साथ बोते हैं। किसी खेत में इसे बराबर बोते रहने से उसकी उर्वरा-शक्ति का नाश होता है। इतना ही नहीं पाँच छः वर्ष तक लगातार खेती होने के बाद फिर उस खेत में बीज बोने के तीन सप्ताह उपरांत पौदों का टिकाव कठिन हो जाता है। इसलिए ज़मीन की उत्पादन-शक्ति बनाये रखने के लिए अन्य वस्तुओं की खेती करते रहना चाहिये। तीसी की खेती अत्यन्त आसान है। खेत के ढेले तोड़फोड़ कर बराबर कर दिये जाते हैं। ज़मीन

में बीज बोने के बहुत से तरीक़े हैं। अकेला बीज बोया जाय तो तीन या चार बार जोत कर हेंगा से पहटा दिया जाता है। कहीं माला बाँस से बोया जाता है। कहीं जोतकर छीट दिया जाता है, बाद में हेंगा से पहटा दिया जाता है। बीज को गहरे खेत में बोते हैं, लेकिन यह गहरा भी ज्यादा नहीं होता है। खेत की सारी गहराई भी बराबर होनी चाहिये। अमेरिकन कृषक भी बीज को बराबर करने के लिए हेंगा फेरते हैं और खेतों में गहरायी रखते हैं। यदि तीसी अकेली ही बोयी जाय तो गोबर की खाद दी जाती है। जब गेहूँ, मटर और मसूर के साथ बोयी जाती है तो उन्हीं की खाद से काम निकल आता है। रूस आदि देशों में तो पहले नये खेतों को चरागाह के लिये छोड़ देते हैं। दस पन्द्रह वर्ष तक उसमें वृक्ष उगते हैं। इसके बाद उन्हें काट कर जो ज़मीन साफ़ निकलती है, उसकी मिट्टी में फ़सल बहुत ही अच्छी होती है। इसके पौदों के लिये नाईट्रोजन अत्यधिक चाहिये। नमी मिट्टी में यह बहुतायत से मिलता है। खेतों में तिपतिया घास बोने से भी तीसी की फ़सल अच्छी होती है।

यूनाइटेड स्टेट में तीसी मई और जून में बोई जाती है। भारतवर्ष में यह रबी की फ़सल है और अगस्त से सितम्बर तक बोई जाती है। तीसी के बोने के समय गर्म और साधारण शुष्क हवा चाहिये, दो महीने के बाद भीगी गर्म हवा होनी चाहिये। इसके उपरांत पौदों के खिलने पर हवा में अधिक नमी की आवश्यकता है। इस समय बिना नमी की शुष्क हवा या

अत्यंत नमीदार हवा अथवा कोहरा होने से फसल मारी जाती है। तीसी जमीन में बोयी जाती है, अच्छी किस्म की तीसी पैदा होने के लिये ऐसी जमीन के अलावा मध्यम वर्षा हो, तेज गर्मी न पड़ती हो और पौदे की वृद्धि भी धीमी हो। सारांश यह है कि पौदों के बढ़ने के समय ज़मीन में बहुत ज्यादा नमी होने से, शाखाएँ कमज़ोर हो जाती हैं। इससे पौधों की वृद्धि मारी जाती है, और बीज बहुत छोटा होता है। उसी प्रकार अत्यंत सूखी ज़मीन में भी तनों से शाखाएँ निकलनी कठिन है। इसलिये ऐसी ज़मीन होनी चाहिये जिसमें अंकुर तुरंत ही विकसित हों। तीसी के पौदे के बीज सपाट अंडाकार और काले भूरे रंग के चमचमाते हुए होते हैं। ये बीज एक सिरे पर तुंड-युक्त होते हैं। प्रत्येक बीज में तेल से आच्छादित गर्भछन्न होता है, और उसमें सूक्ष्म मूल भी होता है। ये बीज स्निग्ध तहों से ढँके होते हैं। बीजों की तह का चिकनापन गरम फल को लसदार चिपचिपा कर देता है।

तीसी के बीज में सुग्गा नामक कीड़ा लगता है। यह एक प्रकार का रोग समझिये। इसी से तीसी की फसल नष्ट होती है। इसके दूर करने का सहज उपाय यह है कि तीसी के खेतों में अन्य वस्तुओं की खेती करनी चाहिए। इस प्रकार किसी खेत में लगातार तीसी की खेती न करने से कीड़े नहीं बढ़ पाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह भी बताया गया है कि तीसी को फारमलडेहाइडे के साथ जल में मिलाकर धोने से कीड़े मर जाते हैं। यह बात मानी हुई है कि तीसी का कोई भी बीज इस रोग से

मुक्त नहीं है। लेकिन फारमल डेहाइडे कीड़ों को ज़मीन में प्रवेश करने के पूर्व ही मार डालती है। वैसे भी जब कभी इन कीड़ों के अंडे पेड़ के पत्तों पर दिखाई पड़ें तो उनको तोड़ कर फेंक देना चाहिये या जला देना चाहिए।

यूनाइटेड स्टेट के दक्षिण-पश्चिम देश की तीसी उत्तर-पश्चिम से भारी होती है। इसलिये यहाँ की तीसी में ३९ प्रति सैकड़ा अधिक तेल निकलता है। प्रत्येक एकड़ में करीब एक बुशल के हिसाब से बीज बोये जाते हैं। खेतों में उगने वाले घास का कोई खास उपयोग नहीं होता है। आवश्यकता प्रतीत होने पर खेतों में सिंचाई भी की जाती है। यदि हो सके तो फूलने और जमने के समय सींचना चाहिए ; नहीं तो नहीं। यदि खेत में ज़्यादा घास उग गयीं हो तो उसे एकबार निरा देना चाहिए। भारतवर्ष में बीज बोने की तादाद प्रत्येक बीघे में छः सेर से आठ सेर तक है। जिस तीसी से रेशा निकाला जाय उसकी फ़सल फूलों के गिरते ही तोड़नी चाहिए। अथवा तीसी की फ़सल बीजों के सारे पकने या कुछ भूरे होने पर काटी जाती है।

तीसी के रेशे वाले पौदे की पींड़ी से सूत व सन निकलता है। डंठल को घाम में डालकर—कूट कूट करके सन निकालते हैं। डंठल के भीतरी अंश—गूदे से बहुत बढ़िया रेशा निकलता है और ऊपरी भाग में केवल मोटा सन अर्थात् पटसन होता है। इस गूदे के उपयोग के लिए ही तीसी के पौदे जल्दी काटे जाते हैं। किसान रेशे के पौदों को बीज कोष के पकने के पहले ही तोड़ते

हैं। इस समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि सारे पौदों के डंठलों का दो तिहाई हिस्सा पीले रंग का होना चाहिए।

प्राचीन यूनान और रोम-निवासी कच्ची और पक्की तीसी को भोजन के लिए उपयोग करते थे। भारतवर्ष में आज भी सैकड़ों ग़रीब इस की रोटियाँ बनाकर अपना पेट भरते हैं। इसके अलावा इसका तेल रंगों के काम में लाया जाता है। रंग के उपयोग में तीसी के तेल का बहुत उपयोग होता है। खरी मवेशियों की ख़ुराक है। तीसी की पुलटिश भी बनती है। यद्यपि तीसी के तेल की बड़ी खपत है; किन्तु अन्य उद्योगों की तरह तीसी से रेशा निकालने का उद्योग अत्यन्त आवश्यक है।

आजकल इस देश से तीसी का ही अधिक निर्यात होता है। तीसी का तेल बहुत ही थोड़ा तैयार होता है। इसके अलावा तीसी से सन निकालने का उद्योग तो बिलकुल ही बन्द हो गया है। प्राचीन समय में भारतवर्ष में कपास का विशाल उद्योग रहने पर भी पटसन वस्त्रों का प्रचार कम नहीं था। लेकिन यदि अब हमने बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारिक दृष्टि से तीसी से सन निकालने का उद्योग न किया तो कालांतर में हमारी पैदावार को बहुत बड़ी क्षति पहुँचेगी। इस महत्व पूर्ण उद्योग की रक्षा के लिए तीसी से सन निकालने के बड़े बड़े कारखाने खुलने चाहिए। भारतीय किसान तो गृहशिल्प के रूप में इस उद्योग को आरम्भ कर अपने गाँवों में ही बहुत बड़ी तादाद में सन निकाल सकते हैं। यूनाइटेड स्टेट में पहले तो तीसी से सन निकालने का उद्योग

बहुत बड़े पैमाने पर था ; लेकिन सन् १७६२ से सूती वस्त्रों का अधिक प्रचार होने से रेशे का उद्योग फिर नहीं रहा। इसलिए सन् १८१० में यूनाइटेड स्टेट के चौदह राज्यों में तीसी की खेती केवल तेल निकालने के लिए होने लगी। आरम्भ में केवल २८३ तीसी से तेल निकालने की मिलें थीं। उस समय उन में ४,००००० बुशल से ज्यादा तीसी की खपत नहीं होती थी जो आजकल एक बड़ी मिल की खपत है। १८५० से यूनाइटेड में स्टेट में तेल निकालने के लिए अलसी भारतवर्ष से आने लगी। १८५० से १८६० तक ओहियो और केनट की मिलों की खपत की आधी पैदावार होने लगी। इस तीसी को पश्चिमीय मिलों में खपत हुई। पूर्वीय मिलें फिर भी बाहर से तीसी मँगाती रहीं। यूनाइटेड स्टेट में तीसी से तेल निकालने का उद्योग बढ़ता ही गया। सन् १८५० से १८७५ तक पच्चीस वर्षों के बीच में इतनी तेल की मिलें खुलीं कि तीसी का आयात दुगना हो गया। इस बीच में देश के उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। लेकिन यह पैदावार १८६२ तक इतनी काफ़ी नहीं हुई की पूर्वीय मिलों की सारी माँग पूरी हो सके। १८६२ के बाद तो तीसी का आयात बिलकुल घट गया। १८५० में ओहियो राज्य में सब से अधिक तीसी पैदा होती थी। १८६६ में इंडियाना और इलीनोस घनिष्ट प्रतिद्वंदी थे। इसके बाद तो पश्चिमीय राज्य दो हिस्सों में विभाजित हो गये। उत्तर पश्चिमीय हिस्से में डेकोटा मिनेसोटा, ईवा, विसकानसिन और दक्षिण पश्चिमीय हिस्से में कनसस, मिसोटी, नेब्रासका, ओकलहना और इंडियाना राज्य थे।

१९०२ में यूनाइटेड स्टेट की सारी पैदावार का ५३ प्रति सैकड़ा हिस्सा डेकोटा में पैदा होता था। इसके बाद केवल उत्तर पश्चिमीय राज्यों में सारी फसल की ९२ प्रति सैकड़ा तीसी पैदा होने लगी। इन राज्यों की तीसी तेल के लिए ज़्यादा कीमती होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि डेकोटा में पहले ऊँचे दर्जे की तीसी पैदा होने लगी। कहा जाता है कि यह तीसी विदेश से लाकर बोयी गयी।

हमें संसार की तीसी की पैदावार बड़े ध्यान से देखनी चाहिए। इससे कायात्मिक इष्टसिद्धि के अलावा अन्य देशों की औद्योगिक और कायात्मिक अवस्था का भी हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्य देशों की फसल के विवरण हमें अपनी पैदावार बढ़ाने में पूर्ण सहायता देते हैं। अस्तु; तीसी की पैदावार में अधिक और औद्योगिक दृष्टि से उन्नति करने वाले यूनाइटेड स्टेट अमेरिका के राज्यों की फसल का विवरण पहले देखिये। अमेरिका का विवरण कैसा है उस सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। भारत में तीसी के व्यापार की गति अच्छी नहीं है। अमेरिका उन्नतिशील और धनी देश है। इसी से वहाँ तीसी का हर प्रकार का व्यापार होता है। अभी अमेरिका और भारत के तीसी के व्यापार में रुपया और चवन्नी का अन्तर है।

—जी० एस० पथिक

अभ्यास

१—प्राचीन काल में तीसी की खेती कौन लोग करते थे और किस अभिप्राय से ?

२—आज कल किन किन देशों में किस काम के लिये तीसी की खेती होती है ?

३—भारतवर्ष में तीसी की खेती करने की क्यों बहुत आवश्यकता है ?

४—तीसी की खेती किस प्रकार की भूमि और आबहवा में हो सकती है ?

५—तीसी के नाम जो भिन्न भिन्न भाषाओं में तुमने पढ़े हैं लिखो ।

१३—ऊषे !

(१)

ऊषे, बता किस व्यक्ति ने निर्माण हाँ, तेरा किया ?
बालार्क-सिन्दुर-बिन्दु तेरे भाल में किसने दिया ?
सर्वप्रथम तेरा हुआ था जन्म कब संसार में ?
किसने लिया निज गोद में सर्वाग्र तुझको प्यार में ?

(२)

सुख-शान्ति-युत कमनीय वह कैसा मनोहर-काल था ?
आलोक-मय करता गगन तब कौन सा ग्रह-जाल था ?
उस काल हँसते थे कुसुम, क्या थी सुकोकिल बोलती ?
तेरे सुस्वागत हेतु तटिनी क्या विकल थी डोलती ?

(३)

प्रातः निकल निज गेह से करती अहो, जब तू गमन,
नव-रश्मियों का मुकुट तेरे शीश रखता कौन जन?
क्या तरल चपल समीर कर लाती यहाँ तुझको वहन?
या ले तुझे निज अङ्क में लाता त्वरित है श्याम-घन?

(४)

ऊषे, यहाँ आती सदा तू बात किसकी मान कर?
किसने दिया यह रूप तुझको दिव्य-तम क्या जान कर?
तुमको कभी देखा नहीं सन्ताप में या शोक में,
किस वस्तु को सब से अधिक तू चाहती है लोक में?

(५)

वन बाग़ बीच बिखेरती बहु नित्य मुक्ता-माल तू,
क्या तोड़ लाती मार्ग से निज मोतियों की डाल तू?
किसने सरलता-मय दिया यह भाव तुझको त्याग का?
किसने भरा तेरे हृदय में रङ्ग यह अनुराग का?

(६)

ऊषे, भला, किस हेतु करती तू निरन्तर हास है?
किसको रिझाने के लिए यह सरल भृकुटि-विलास है?
कहती न कुछ बस, एक ही सी तू खड़ी है हँस रही?
है जान पड़ता गेह से निज सीख कर आई यही।

(७)

क्षण-काल ही के हेतु हे ऊषे, सकल तव साज हैं।
चाञ्चल्य-पूरित बालिका के से सभी तव काज हैं।

इन्द्रप्रभा सी रङ्गिणी ले शीघ्र तू आती यहाँ,
चपला सदृश बस चमक कर है लौट फिर जाती कहाँ ?

—मुकुटधर

अभ्यास

१—ऊषा से तुम क्या समझते हो ?

२—ऊषा का आगमन पहले किन देशों में होता है ?

३—बालार्क-सिन्दुर-विन्दु, मनोहर-भाल, नवरश्मि, श्यामघन में कौन कौन से समास हैं ?

४—दूसरे पद्य के अर्थ लिखो ।

५—' क्षण काल के हेतु ऊषे सकल तव साज हैं ' के कहने से कवि का क्या अभिप्राय है ?

१४—वृक्ष-चर प्राणी

साधारणतः विचार करने से यह प्रकट होता है कि विश्वात्मा ने सृष्टि को शोभान्वित करने के हेतु वृक्षों की उत्पत्ति की है। यदि वृक्ष न उगते तो भू-मण्डल उदासीन और सूना जान पड़ता ; परन्तु बात इतनी ही नहीं है। वृक्ष कवि के हृदय को भी विकसित करते और उस पर प्रफुल्ल प्रकृति के वसन्तोत्सव का आनन्द-मेह बरसाते हैं। वे चित्रकार की दृष्टि में नैसर्गिक छटा प्रदर्शित करते हैं, सन्तप्त प्रेमियों को आश्वासन तथा भूखों को भोजन प्रदान करते हैं और पथिकों के शान्ति-निकेतन हैं। वे

देवताओं को नित्य नया शृङ्गार देते हैं। वे ईश्वर का गौरव प्रकट करते हैं। इन सबके अतिरिक्त वे अगणित प्राणियों के संसार भी हैं।

वसन्त-ऋतु में वृक्षों पर नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति होती है। ग्रीष्म-ऋतु के आते ही उनकी शाखायें कीड़े-मकोड़ों का क्रीडा-स्थल बन जाती हैं। प्रातःकाल और सन्ध्या समय वहाँ अगणित प्राणियों की मधुर-ध्वनि होती रहती है। सारांश यह कि प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक काल में झूमते हुए वृक्ष संसार पर आन्दोलन-पूर्ण साम्राज्य विद्यमान रखते हैं।

अब किसी जंगल के वृक्ष-शिखर पर ध्यान दीजिए। वहाँ भी अद्भुत व्यापार हो रहा है। कीड़े-मकोड़े पक्षी और अन्य छोटे छोटे प्राणियों के अतिरिक्त वहाँ मनुष्य और हाथी के समान विशाल देहधारी प्राणियों की बस्ती है। ये प्राणी देखने में भयानक और अद्भुत हैं। इसी बस्ती में बसने वाले एक दो प्राणियों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार किया जाता है।

कई एक बातों पर विचार करने से यही कहना पड़ता है कि वनमानुष और बन्दर अत्यन्त चित्ताकर्षक प्राणी हैं। महत्व की श्रेणी में मनुष्य के बाद इन्हीं का दर्जा आता है। आश्चर्य तो यह है कि बिना वृक्ष के इनकी जीवन-नौका सुरक्षित नहीं रह सकती। इनके शारीरिक गठन पर ध्यान देने से जान पड़ता है कि ईश्वर ने आजानुबाहु और तूल देह प्रदान करके इन वनचरों को वृक्ष ही पर निवास करने योग्य बनाया है। ये प्राणी-भूमि पर चल तो

सकते हैं; परन्तु ये चतुष्पद थलचारी नहीं कहे जा सकते। यथार्थ में ये चतुर्बाहु वृक्ष-चर जन्तु हैं और हमें ऐसा ही कहना उचित भी होगा। इनका जीवन वृक्ष ही पर निर्भर है। वह इन्हें निवासस्थान और भोजन देता है। इसके अतिरिक्त आपत्ति-काल में इनकी रक्षा भी वही करता है।

मनुष्य के पैर में उसकी देह को सँभालने, तोलने और उछालने की शक्ति है। इसी कारण जिस सहूलियत से मनुष्य भूमि पर चल फिर सकता है, वैसा पैर में पकड़ने की शक्ति न रहने से वह वृक्ष की पींड तथा उसकी डालों पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु बन्दर और वनमानुष के पैर में देह के बोझ को सँभालने की शक्ति नहीं होती। जब ये जन्तु पृथ्वी पर चलते फिरते हैं तब इनके पैर शरीर के बोझ से झुक जाते हैं। निस्सन्देह, इनके पैर में पकड़ने की अपूर्व शक्ति रहती है और इसी कारण इन्हें वृक्षों पर घूमना फिरना सहज जान पड़ता है।

हाँ प्रायः सब छोटे बड़े बन्दर अपने अपने वृक्षों से उतर कर जंगल में दूर दूर तक दौड़ लगाया करते हैं। परन्तु वनमानुष वैसा नहीं कर सकता। बन्दर की भाँति पृथ्वी पर दौड़ने में वनमानुष को उतना ही कष्ट होता है जितना कि मनुष्य की देहरूपी दो पाँव की गाड़ी को चतुष्पद जीवधारी के चार पाँव की तेज़ी से मुकाबिला करने में कष्ट होता है। सच तो यह है कि वनमानुष, बन्दरों के समान पृथ्वी पर चल नहीं सकता। और

यदि वह चले भी तो बन्दर की बराबरी नहीं कर सकता। यह देखा गया है कि वनमानुष पृथ्वी पर चलते समय अपने लम्बे लम्बे हाथ और लम्बी लम्बी उँगलियों से लाठी का काम लेता है और पीछे के दोनों पाँव यहाँ तक सिकोड़ लेता है कि उँगली के जोड़ भूमि को छूने लग जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि बहुतेरे मनुष्याकृति बन्दर पृथ्वी और वृक्ष दोनों समान गति से चलते हुए देखे गये हैं।

इससे यह नहीं कहा जा सकता कि ये प्राणी अपने पूर्व-पुरुषों के निवास-स्थान से अलग किये जाने पर जीवित रह सकेंगे। यदि आज संसार भर के वृक्ष काट दिये जायँ तो ये सब प्राणी एक एक करके कुछ ही दिनों में अवश्य नष्ट हो जायँगे। प्रथम तो ये भूमि पर रह ही नहीं सकेंगे। यदि रह भी गये तो भोजन की अड़चन आ उपस्थित होगी। हाँ, स्लोथ के समान इनकी गति नहीं होगी।

स्लोथ एक वृक्ष-चर प्राणी है। उसका डील-डौल हाथी के समान होता है। वह उसी प्रकार वृक्ष पर उलटा लटका रहता है जैसा कि चमगीदड़। परन्तु उसमें खूबी यह होती है कि वह चमगीदड़ के समान वृक्ष को छोड़ कर थोड़ी देर के लिये भी अन्यत्र नहीं जा सकता। और और वृक्ष-चर प्राणी कम से कम पानी पीने के लिये वृक्ष का परित्याग करते हैं। परन्तु स्लोथ पैदा होने के दिन से मरण समय तक वृक्ष का आश्रय नहीं छोड़ता। खुले दिन में पत्तों के रस से बरसात में वृक्ष की शाख पर बहते

हुए पानी से वह अपनी प्यास बुझाता है। कहते हैं कि यदि उक्त जीवधारी नीचे गिरा दिया जाय या उसका वृक्ष जड़ से काट दिया जाय तो वह अवश्य ही मर जायगा। पृथ्वी पर सरक कर चलना उसके लिये वैसा ही असाध्य है जैसा कि सिंह के लिये वृक्ष पर चढ़ना।

प्रायः ऐसा ही हाल चमगीदड़ और उड़ने वाली लोमड़ी का भी होता है। ध्यान रहे कि इन दोनों प्राणियों में कोई अन्तर नहीं है, अंतर है तो केवल डील-डौल का। यदि चमगीदड़ों का वृक्ष काट दिया जाय तो सम्भव है कि वे कन्दराओं, सूने मकानों और मन्दिरों में जा बसेंगे और किसी न किसी प्रकार अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। परन्तु उड़ने वाली लोमड़ी का ऐसा हाल नहीं होता। वे कृत्रिम स्थान—घर, मन्दिर आदि—में रह ही नहीं सकते। उन्हें उलटा लटक कर विश्राम के लिये वृक्ष अवश्य चाहिये। बन्दर के बच्चे के समान इनके भी बच्चे अपनी माँ के पङ्ख में चिपटे रहते हैं। यदि सब वृक्ष काट दिये जायँ तो इनका घर और इनकी ज़िन्दगी दोनों नष्ट हो जाएँ और इनके बाल बच्चों का भी नाम निशान मिट जाय। सच तो यह है कि ये सारे प्राणी वृक्ष ही पर सुखी रह सकते हैं।

एक बार एक वन्य-पशु निरीक्षक ने केमरून के जङ्गल में एक जवान वनमानुष को तीस चालीस फ़ुट की लम्बी छलांग भरते हुए देखा था। छलांग भरने के लिये उस प्राणी को आहिस्ते से उछलते देख दर्शक को पहले ऐसा बोध

हुआ मानों वह सात-आठ .फुट से अधिक दूर नहीं जा सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर ने इन मूल निवासियों को जो अपूर्व शक्ति प्रदान की है उसका मुख्य उद्देश यही है कि इन्हें वृक्ष के उच्च शिखर पर से भूमि पर की छोटी छोटी झाड़ियों में आने जाने में सुगमता हो। कहने को तो यह ईश्वर की साधारण देनगी है; परन्तु इस देनगी की महत्ता उस समय जान पड़ती है जब चीता वनमानुष के बच्चों के निवास-कुञ्ज पर धावा करता है। ऐसे अवसर पर बच्चों का असाधारण कौशल और असीम साहस देखते ही बनता है। उसी निरीक्षक को जङ्गल में एक वनमानुष को लगभग सात .फुट ऊँचा देख कर बड़ा ताज्जुब हुआ था। वह प्राणी क्षण भर में एक ऊँचे वृक्ष के शिखर पर इस फुर्ती से जा चढ़ा कि दर्शक के अतिरिक्त वहाँ जितने जङ्गली मनुष्य खड़े थे उन सब को उसके चढ़ने के ढंग पर विस्मय होने लगा।

इन जीवधारियों का मार्ग वृक्ष की चोटियों के ऊपर से होता है। जब इनका कोई शत्रु इन्हें हानि पहुँचाने के लिये वृक्ष पर चढ़ता है तब वे शीघ्रता से एक वृक्ष की चोटी से दूसरे वृक्ष की चोटी पर जा पहुँचते हैं। यदि वहाँ भी बचाव का कोई लक्षण न दीखा तो वे निकट के दूसरे वृक्ष की चोटी की किसी मोटी शाखा को पकड़ कर यहाँ तक अपने नज़दीक खींच लाते हैं जिसमें उन्हें दूसरे वृक्ष की चोटी पर जाने में सुगमता हो। इस उपाय से वे एक वृक्ष की चोटी से दूसरे वृक्ष की चोटी पर कूदते-फाँदते

चले जाते हैं। वृक्षों की चोटी को मार्ग बना कर सैर करना जितना आनन्ददायक होता है उससे अधिक भय भूमि पर गिरने और मृत्युमुख में पहुँच जाने का भी रहता है। परन्तु इन चतुर्बाहु वृक्षचरों को इस बात की थोड़ी भी परवाह नहीं रहती। वे कभी नीचे गिरते भी नहीं हैं।

वृक्षों पर वनमानुष के चलने फिरने का ढँग बड़ा अनोखा होता है। एक सीध में ऊपर की ओर दौड़ लगाते समय वे अपने आगे की दोनों प्रलम्ब बाहुओं को सिर की सीध में ऊपर उठाये रहते हैं। इससे भी अधिक उनकी कौतूहल-वर्धक और चमत्कार-पूर्ण चाल तब देखने में आती है जब वे वायु-मण्डल में तीस चालीस फ़ुट की लम्बी छलाँग भरते हुए आकाश वृक्ष के सामानान्तर बड़ी दूर दूर की यात्रा करते हैं। ऐसी लम्बी यात्रा के समय मार्ग में उन्हें वृक्षों की शाखाओं का आश्रय लेना ही पड़ता है; परन्तु प्रशंसा की बात यह है कि वे उस पर पल भर के लिये भी विश्राम नहीं करते। हाँ, जब कभी वे चलते चलते अपने मार्ग से विचलित होकर कुछ नीचे आ जाते हैं तब वे अपनी राह पकड़ने के लिये हाथ आई हुई शाखा के ऊपर इस सफ़ाई और नज़ाकत से आ बैठते हैं जिसे देख 'हारीज़न्टल बार' पर कसरत करने वाला पहलवान भी दंग हो जाता है।

पहले लोगों का ऐसा अनुमान था कि वनमानुष अपने लिये घर नहीं बना सकता। वह किसी अन्य वृक्ष-चर प्राणी के बने बनाये घर पर अधिकार कर लेता है और वहीं सकुटुम्ब जा

बसता है। परन्तु लन्दन के चिड़िया खाने से निकल भागने वाले वनमानुष के बच्चे ने लोगों के इस मिथ्या विश्वास पर पानी फेर दिया। ज्योंही वह जन्तु अपने पिंजरे से अलग हुआ त्योंही वह समीपस्थ सनोवर के वृक्ष पर जा चढ़ा। इस समय बर्फ़ पड़ रही थी। अतः वह शीत से बचने के लिये पत्ते और टहनियों का घर बना कर उसमें जा बैठा। प्रातःकाल जब उसकी खोज की गई तब लोगों को उसका भेद प्रगट हुआ। कहते हैं कि उस वनमानुष का बनाया हुआ घर दर्शकों के अवलोकनार्थ एक सुरक्षित स्थान में रख दिया गया है। देखने में तो वह घर बड़ा बेढंगा मालूम होता था, परन्तु था मज़बूत।

इन सब बातों से प्रगट होता है कि वृक्ष वनमानुष का मार्ग है। उसमें लगने वाले मधुर फल उसके और उसके आश्रितों के खाद्य पदार्थ हैं। उसकी नरम नरम टहनी और चिकने पत्ते उसकी सन्तति के लिए गृह-निर्माण करने की सामग्री हैं। यहाँ यह भी बता देना अनुचित न होगा कि रात्रि में जब वनमानुष के बच्चे अपने घर में सोते रहते हैं तब उनका शूर पिता चौकसी करने के लिये उतर आता है और वृक्ष-पाद से टिक कर चैतन्य बैठा रहता है।

यों तो वृक्ष पर सभी प्रकार के बन्दरों की प्रबलता रहती है परन्तु स्पाइडर नामक बन्दर की प्रचण्डता देख कर यही कहना पड़ता है कि उसके समान वृक्ष पर पूर्णतः अधिकार रखने वाला प्राणी वनमानुष के अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है। उसके

हाथ अङ्गुष्ठहीन होते हैं ; परन्तु उसकी पूँछ शक्ति-शाली होती है और वह वैसा ही कार्य कर सकती है जैसा कि हाथ से किया जा सकता है। इस लिये यदि उसकी पूंछ का नाम पञ्चम बाहु रक्खा जाय तो कुछ भी अनुचित न होगा। जिस प्रकार और दूसरे बन्दर वृक्ष पर अपने हाथ से लटक सकते हैं तथा झूल सकते हैं ठीक उसी भाँति वह भी अपनी पूंछ से लटक सकता है और झूल सकता है। इतना ही नहीं, वह उससे अपना भोजन भी संग्रह कर सकता है। हनुमान जी ने कपटी कालनेमि का वध उसे पूँछ से लपेट कर और भूमि पर पटक कर किया था। स्पाइडर बन्दर भी ठीक इसी युक्ति से अपने शत्रु का संहार करता है। प्रकृति बड़ी कौतुकमयी है। सिवा उसके यह कोई नहीं बता सकता कि अङ्गुष्ठ के अभाव की पूर्ति पूँछ में क्यों की गई है।

अन्त में यह बात बता देना आवश्यक होगा कि ऊपर कहे गये वृक्ष-चरों के अतिरिक्त और भी ऐसे छोटे बड़े हज़ारों प्राणी हैं जिनका निर्वाह वृक्ष के बिना नहीं हो सकता। इनमें से कुछ तो आपत्ति से बचने के लिये और कुछ शिकार पकड़ने के हेतु वृक्ष पर जा बसे हैं। यथार्थ में ईश्वर ने इनके पूर्व पुरुषों को वृक्ष पर नहीं पैदा किया था और न उन्हें वृक्ष पर सुगमता से चढ़ने उतरने तथा छलांग भरने योग्य अवयव ही दिया था। परन्तु आवश्यकता की प्रबल प्रेरणा ने इन्हें भूमि पर से भगा कर वृक्ष की शरण में पहुँचा दिया। वहाँ जीवन-संग्राम के लिये जिन बातों की माँग

इनको हुई वह सबकी सब इनके हाथ, पाँव, पंजे और पूँछ में विशेप प्रकार की शक्ति सञ्चित कर के इन्हें दे दी गई। चीता, सर्प, रीछ आदि भयानक जीवधारियों को वृक्ष की शरण जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तो भी वे वृक्षों पर घूमते फिरते हैं। इसका मूल कारण यही जान पड़ता है कि ये या तो घात लगाने के लिये वृक्ष पर जा चढ़ते हैं अथवा भूमि पर शिकार की कमी होने से वृक्षों पर उसकी बाहुल्यता देख धावा मारते हैं।

—वनमाली प्रसाद शुक्ल

अभ्यास

१—संसार में वृक्षों की सृष्टि क्यों आवश्यक है ?

२—मुख्य मुख्य वृक्षचर प्राणी कौन से हैं ? उनका जीवन-निर्वाह किस प्रकार होता है ?

३—जंगलों को काट डालने से वृक्षचर प्रणियों की क्या दशा होगी ?

४—वनमानुष व स्लोथ के विषय में क्या जानते हो ?

५—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखो—

नैसर्गिक, क्रीडास्थल, व्यापार, अजानुवाहु और संतप्त।

१५—गङ्गा की शोभा

नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिबिध भय दूर मिटावत॥
श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस॥
शिव सिर मालति-माल भगीरथ नृपति पुण्यफल।
ऐरावत गजगिरि पति हिम मन कण्ठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहान नीर कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छवि पावत।
वारिधि नाते ससि-कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
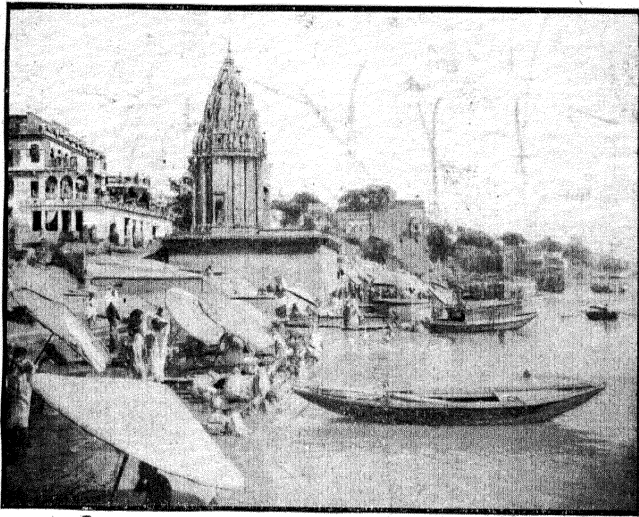
गंगा-घाट (बनारस)

दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गङ्गा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

—हरिश्चन्द्र

अभ्यास

१—गङ्गा की शोभा वर्णन करो।

२—क्या तुमने कोई नदी देखी है? अथवा तुम्हारे गाँव या घर के समीप कोई नदी बहती है? अगर बहती हो तो बताओ उसके किनारे कौन से पेड़ लगे हैं? वह नदी किस नदी से मिलती है? उस नदी का पाट कितना चौड़ा है? उसमें कोई नाव चलती है या नहीं? उसमें मछलियाँ पाई जाती हैं या नहीं? उससे सिंचाई होती है या नहीं? उसके किनारे खेत हैं या नहीं?

३—इन शब्दों के अर्थ लिखो—

लोल, कल, अम्बुज, धवल, सञ्चारन, साका, जुगल, गुच्छ, वारिधि, सुभग, स्वर्ग, सोपान, द्रवित, नख, चन्द्रकान्त, गिरिवर, ससि, नवल।

४—इनके शुद्ध रूप लिखो—

गुच्छ, ससि, जुगल, कुसुमन, धुजा, सरिस।

१६—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"

मेदिनीपुर ज़िले में वीरसिंह नाम का एक गाँव है। वहाँ एक बहुत ग़रीब बुढ़िया ब्राह्मणी रहती थी। ठाकुरदास बन्धोपाध्याय नाम का उसके बेटा था। ठाकुरदास जब छोटे थे तब उनकी माँ सूत कात कर किसी तरह गुज़ारा करती थी। जब

ठाकुरदास बड़े हुए तो वह कलकत्ते में आये। बहुत खोज करने पर उनको वहाँ ८) महीने की एक नौकरी मिली तब से इसी ८) में वे अपने घर-खर्च चलाने लगे।

कुछ दिनों ठाकुरदास के एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होंने ईश्वरचन्द्र रक्खा। पुत्र के पढ़ाने की ठाकुरदास को बड़ी अभिलाषा थी। उन दिनों आजकल की तरह गाँव गाँव में पाठशालाएँ न थीं। ठाकुरदास ने कालीकान्त चट्टोपाध्याय को अध्यापक नियत करके अपने गाँव वीरसिंह में एक पाठशाला खुलवायी और वहीं पर अपने लड़के ईश्वरचन्द्र के पढ़ने का प्रबन्ध किया।

ईश्वरचन्द्र का पढ़ने में बहुत मन लगता था। सब लड़कों में सब से पहिले ही पाठ याद करके गुरु जी को सुना देते थे इससे गुरु जी उनको बहुत प्यार करते थे। यहाँ तक कि रात को भी उनको पढ़ाते थे और अपनी गोद में लेकर उनको उनके घर पहुँचा आया करते थे। ईश्वरचन्द्र ने तीन वर्ष में उस पाठ-शाला की सब पढ़ाई पढ़ ली। जिस तरह वे पढ़ने में सब बालकों से तेज़ थे उसी तरह लिखने में भी उनके अक्षर अपने दर्जे के सब लड़कों से सुन्दर बनते थे।

एक दिन कालीकान्त ने ठाकुरदास से कहा कि जितना मैं पढ़ा सकता था वह सब तुम्हारे लड़के ईश्वरचन्द्र को पढ़ा चुका हूँ। अब आगे मैं नहीं पढ़ा सकता। इससे अब तुम इसे कलकत्ते ले जाओ और इसके पढ़ाने का अच्छा प्रबन्ध करो। यदि इसके

पढ़ने का उचित प्रबन्ध होता रहा तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह लड़का अद्वितीय विद्वान् होगा।

गुरु जी के मुख से अपने पुत्र की ऐसी प्रशंसा सुनकर ठाकुरदास का उत्साह और भी बढ़ गया। उन्होंने कलकत्ते ले जाकर इनको अंगरेज़ी पढ़ाने का विचार किया। परन्तु ईश्वरचन्द्र की माता बड़ी चिन्ता में पड़ गयीं। वे सोचने लगीं कि ईश्वरचन्द्र विदेश चला जायगा तो मैं कैसे रहूँगी। फिर अभी तो यह आठ वर्ष का बच्चा ही है। अकेले इसका जी कैसे लगेगा। वहाँ जब यह मुझे याद करके रोवेगा तो इसे गोद में लेकर कौन बहलावेगा। इसी प्रकार की अनेक बातें माता के चित्त को दुखी करने लगीं। परन्तु जब यह सोचा कि घर में रहने से लड़के की पढ़ाई न हो सकेगी और इससे उसकी भावी उन्नति में बाधा पड़ेगी तब किसी तरह अपना हृदय कठोर करके पुत्र को कलकत्ते भेजने को राज़ी हुई।

गुरु कालीकान्त जी को ईश्वरचन्द्र से ऐसा प्रेम हो गया था कि वे भी उनके साथ साथ कलकत्ते गये। अपने गाँव से कलकत्ते आते समय रास्ते में ईश्वरचन्द्र ने मील के पत्थरों पर अंगरेज़ी के अङ्क लिखे देखे। बस उन्होंने कलकत्ते पहुँचते पहुँचते सब अङ्क याद कर लिये और पिता के पास एक बिल अँगरेज़ी में लिखा रक्खा था उसका जोड़ ठीक ठीक लगा दिया।

आठ वर्ष के बच्चे की ऐसी आसाधारण शक्ति देख कर सब अचम्भे में आ गये। गुरु जी ने तो मारे प्रेम के उनको गोदी में

उठा लिया और चूम कर कहने लगे—" धन्य ईश्वर ! भगवान करे तुम बहुत दिन जियो, हम जो तुमको इतना चाहते हैं सो हमारा चाहना आज सार्थक हुआ ।"

पुत्र की प्रशंसा सुन कर पिता का हृदय भी आनन्द से भर गया। उस समय उनकी आमदनी १०) महीने की थी उसी में सारे गृहस्थी के खर्च चलाते थे। तो भी ठाकुर दास ने पाँच रुपये महीना फ़ीस देकर लड़के को हिन्दू कालेज में अँगरेज़ी पढ़ाने का विचार किया। किन्तु पहले संस्कृत अच्छी तरह पढ़ ले तब पीछे से अँगरेज़ी पढ़ावेंगे—यह सोच कर अन्त में संस्कृत कालेज में ही ईश्वरचन्द्र को भरती कराया।

ठाकुरदास ईश्वरचन्द्र को लेकर कलकत्ते में अपने मालिक जगद्दुर्लभ सिंह जी के घर आये। सिंह जी बड़े ही दयालु और भले आदमी थे। वह ठाकुरदास को पिता की तरह आदर सम्मान करते थे।

ईश्वरचन्द्र जब कलकत्ते आये ही थे तब कुछ दिनों तक उनको अपनी माँ और दादी बहुत याद आती थीं ; किन्तु सिंह जी की छोटी बहिन राईमणि उनको उनकी माता से भी अधिक प्यार से रखने लगीं। उनके खाने पीने तथा और सब बातों का ध्यान राईमणि को सदा बना रहता था। प्रेम से तो पशु भी वश में हो जाता है फिर आठ वर्ष का बालक यदि राईमणि के प्यार के सामने माँ को भूल गया तो कौन सी अचम्भे की बात है।

ईश्वरचन्द्र को उनकी सुशीलता के कारण सिंह जी के घर के सभी लोग बहुत प्यार करते थे। यहाँ पर ईश्वरचन्द्र को घर से भी अधिक आराम मालूम होने लगा। उन्हें सब से अधिक प्रसन्नता तो इस बात की थी कि यहाँ उनके पढ़ने की बड़ी सुविधा थी। यदि सिंह जी ऐसे सज्जन के घर ईश्वरचन्द्र को आश्रय न मिलता तो उनकी प्रतिभा का विकास होता या नहीं इसको कौन कह सकता है।

आठ वर्ष के बालक ईश्वरचन्द्र ने कलकत्ते के संस्कृत कालेज में भरती होकर छः महीने के भीतर ही अपनी ऐसी योग्यता दिखलाई कि उनको पाँच रुपये महीने की छात्रवृत्ति मिलने लगी। इनके पिता को इससे कुछ सहारा मिला। यह जो कुछ पढ़ते रात को सोते समय सब पिता को कण्ठ सुना दिया करते थे। ठाकुरदास नौ बजे रात को घर आया करते थे। यदि किसी दिन पुत्र को सोते पाते तो बुरी तरह से उनको मारते थे। बालक का रोना सुनकर सिंह जी के घर के सब लोग ठाकुरदास को बहुत कुछ कहते सुनते और लड़के को इस तरह पीटने की निन्दा भी करते थे। पिता के घर आने के पहले कहीं नींद न आ जाय इस डर से ईश्वरचन्द्र अपनी आँखों में कड़वा तेल लगा लिया करते थे क्योंकि तेल की चरपराहट से नींद नहीं आती थी।

आठ वर्ष के छोटे बालक ईश्वरचन्द्र संस्कृत कालेज को छाता लगाकर पढ़ने जाया करते थे यही मालूम होता कि मानो छाता

ही कहीं चला जा रहा है क्योंकि एक तो अवस्था ही कम थी दूसरे यह कुछ ठिगने भी थे।

ईश्वरचन्द्र ने व्याकरण के दर्जे में तीन साल छः महीने पढ़ा, इसी बीच में उन्होंने अमरकोष और भट्टी काव्य भी पढ़ डाले। फिर काव्य के दर्जे में पढ़ने लगे और उसमें बड़ी योग्यता के साथ पास हुए। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अलङ्कार पढ़ने लगे। इसके उपरान्त छः महीने में ही स्मृति-शास्त्र भी पढ़ लिया और 'ला' कमेटी की परीक्षा में बड़ी योग्यता से पास हुए और इसी कारण त्रिपुरा की जजी में पण्डित का पद मिला। परन्तु इनके पिता को इनका यह पद अच्छा न लगा, इसीसे पितृ-भक्त ईश्वरचन्द्र ने उस पद को छोड़ दिया। फिर इन्होंने दर्शनशास्त्र और वेदान्त की समस्त पाठ्य पुस्तकें पढ़ कर संस्कृत कालेज की सारी पढ़ाई समाप्त कर दी। उनके जितने अध्यापक थे, वे सब यही कहा करते थे कि "यह बालक भारतवर्ष में अद्वितीय पंडित होगा।"

किसी बालक ने भी इतनी थोड़ी अवस्था में संस्कृत के इतने शास्त्रों को नहीं पढ़ा। संस्कृत शास्त्रों की ऐसी अच्छी योग्यता किसी और को भी हुई या नहीं यह बात ठीक ठीक नहीं कही जा सकती। उनकी इसी अपूर्व योग्यता के कारण उनके अध्यापकों ने मिलकर उनको "विद्यासागर" की पदवी दी थी। इसके उपरान्त और भी कई लोगों को विद्यासागर की पदवी मिली; परन्तु

आज भी " विद्यासागर " नाम लेने से केवल पूज्यपाद पं० ईश्वर-चन्द्र का ही बोध होता है।

विद्यासागर के छात्र-जीवन की कुछ बातें हम ऊपर सुना चुके हैं। जिनसे उनकी अपूर्व प्रतिभा का अन्दाज़ा कुछ कुछ मिल सकता है। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि कैसी कैसी कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने कैसे परिश्रम से इतनी विद्या पढ़ी तो और भी आश्चर्य होता है।

जिस समय वे व्याकरण की पढ़ाई समाप्त कर चुके थे तब उनके और दो छोटे भाई कलकत्ते में पढ़ने आये थे। ईश्वरचन्द्र बड़े सबेरे स्नान करके बाज़ार से सौदा-सुलुक लाते, मसाला पीसते, तरकारी बनाते, अपने हाथ से लकड़ी फाड़ते, इस प्रकार दो बार चार आदमियों की रसोई बनाते थे। रसोई में दाल भात तरकारी आदि कई चीज़ें बनानी पड़ती थी। स्वयं अपने हाथों चौका बर्तन भी करना पड़ता था। पिता जी को और छोटे भाइयों को कष्ट होगा यह सोच कर वह उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं लेते थे। सब काम अपने आप ही करना उनको रुचता था। पिता निर्धन थे इससे इनको कभी कुछ अच्छी वस्तु खाने को भी नहीं मिलती थी। जो कुछ मिलता उसी को खाकर प्रसन्न रहते थे; परन्तु जहाँ तक हो सकता पिता और दोनों भाइयों को अच्छा भोजन कराने का यत्न करते थे।

भोजन बनाने का कष्ट तो उठाना ही पड़ता था; परन्तु सोने का भी उनको बड़ा ही कष्ट था। उनके सोने का स्थान केवल दो हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा था।

वह दस बजे रात को खा पीकर सोते थे और दो घण्टे के बाद ही उनके पिता उनको १२ बजे फिर जगा देते थे। बस ईश्वरचन्द्र पढ़ने बैठ जाते थे और पढ़ते पढ़ते भोर हो जाता था। कालेज के रास्ते में आते जाते समय भी वह बराबर पढ़ा करते थे। विद्यासागर के छात्र-जीवन की बातें सुनकर तो तुमको अचरज होता ही होगा। पर यदि उनके जीवन की और बातें सुनोगे तो और भी अचरज होगा। यह केवल विद्यासागर ही नहीं थे ; किन्तु वे दीन दुखियों को बहुत कुछ दान दिया करते थे इससे उनको लोग 'दयासागर' भी कहते थे।

—सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०

अभ्यास

१—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर में तुमको जो अपूर्व गुण देख पड़े हैं उनको बतलाओ और उन गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न करो।

२—उनको विद्यासागर की पदवी कब और कैसे मिली ? क्या यह पदवी उनके लिए तुम्हारी समझ में ठीक थी ?

३—वह पढ़ने में कैसा परिश्रम करते थे ? उनके विद्यार्थी जीवन को अपने विद्यार्थी जीवन से मिलाओ और जो दोष तुमको अपने जीवन में दृष्टि आवें उनके छोड़ने का प्रयत्न करो।

१७—शान्ति

१

शान्ति, प्यारी शान्ति, तेरा है कहाँ पर वास ?
ढूँढ़ कर तुझ को थका, पहुँचा न तेरे पास॥

लोग तेरे ही लिये करते अनेक उपाय।
किन्तु, तो भी तू न लगती हाथ उनके हाय!

२

कोइ तुमको खोजता है जंगलों के बीच।
कोइ तुझको चाहता है काम करके नीच॥
कोइ तुझको प्राप्त करने के लिए धनवान।
बना रुचि से रसिक लंपट, करे मदिरा पान॥

३

कोई सता कर और को कर सत्य का अपलाप।
देखता है स्वप्न तेरा, प्राप्त कर अभिलाष॥
कोई उद्यमहीन हो आलस्य ही में चूर।
जानता तुमको निकट ही पर रहे तू दूर॥

४

कोई तेरे हेतु रचता है विविध षड्यन्त्र।
जा मसानों में निडर कोई जगाता मंत्र॥
शत्रु से संग्राम में तुझ को कोई अनजान।
जानता है, किन्तु पाता है अशान्ति महान॥

५

एक आध उपाधि लेकर मूढ़, कोई मोल।
तुझे पाने के लिये देता है थैली खोल॥
कोई झूठे गुण गँवा कर, ढोंग का रच ढंग।
शान्ति, तेरे हेतु है अपना जमाता रंग॥

६

चर्च, मस्जिद, मन्दिरों में कर अनेक प्रवेश।
शान्ति तेरे ही लिये सुनते वहाँ उपदेश॥
चाहते इस तरह तुझको सब मनुष्य तथापि।
शान्ति, तू मिलती नहीं संसार में कुत्रापि॥

७

मैं समझता हूँ, बताते हैं यही सब वेद।
भेद भाव मिटे बिना मिटता नहीं है खेद॥
बस, अगर कोई कहीं संसार को दे छोड़।
मोहमय ममता मिटावे, सर्व नाते तोड़॥

८

कर्मयोगी ज्ञान से सम्पन्न हो स्वच्छन्द।
ब्रह्ममय ब्रह्माण्ड की सेवा करे सानन्द॥
तो, तुझे निज हृदय में ही कर सके वह प्राप्त।
तू रहे उसके लिए संसार भर में व्याप्त॥

—रूप नारायण पाण्डेय

अभ्यास

१—कुत्रापि, खेद, कर्मयोगी, ब्रह्ममय, ब्रह्माण्ड, वास, लंपट के अर्थ बताओ।

२—८वें पद्य का अर्थ लिखो।

३—उपदेश, व्याप्त, शान्ति व्याकरण से क्या हैं?

१८—धारा नगरी

धारा बहुत प्राचीन नगर है। राजा भोज के समय में वह विद्या का प्रधान केन्द्र था। आज कल भी वह धारराज्य की राजधानी है। वह राजपूताना मालवा रेलवे के मऊ स्टेशन से ३४ मील है। स्टेशन पर मोटर गाड़ियाँ आसानी से मिल जाती हैं।

धारा राज्य का क्षेत्र फल १७७८ वर्ग-मील है। इसमें दो नगर तथा ६७२ ग्राम हैं। सन् १९२१ में इसकी जन संख्या दो लाख तीस हज़ार थी। इस राज्य का मुख्य नगर धार है जिसकी जन-संख्या सन् १९२१ में १६ हजार थी।

धारा नगरी पहुँचते ही सब से पहले वहाँ का किला दिखाई पड़ता है। इस किले को १४ वीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक ने बनवाया था। इसी किले में द्वितीय बाजीराव का जन्म सन् १७७४ में हुआ था। सन् १८५७ में गदर के समय जनरल स्टुअर्ट ने घेरा डाल कर सात दिन तक गोला बारूद चला कर इसे फतह किया था। यहाँ के खजाने में उसे ९ लाख रुपये मिले थे। इस किले के अन्दर एक पुरानी बावली है, जिसकी गहराई १५०—२०० फ़ीट है। ऊपर से पानी की सतह तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। किले के अंदर आज कल कैदी रक्खे जाते हैं। उनसे कपड़ा बुनने का काम भी लिया जाता है।

किले से थोड़ी दूर पर मुञ्ज सागर नाम का एक बड़ा तालाब है। यह धारा नगरी के १२ तालाबों में से प्रधान है। इस तालाब

को राजा मुञ्ज ने दसवीं सदी में बनवाया था। राजा मुञ्ज भोज का चाचा था। वह रणवीर योद्धा तथा सुप्रसिद्ध लेखक था। १२ तालाबों के कारण धार की प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ गई है। कई तालाबों में कमल भी होते हैं। बसांत में जब सब तालाब भर जाते हैं और चारों तरफ़ हरियाली छा जाती है तब यहाँ का दृश्य बहुत सुहावना मालूम होता है। एक तालाब के पास छोटी सी पहाड़ी पर श्रीकालिका देवी जी का मन्दिर है। मन्दिर के ऊपर तक सीढ़ियाँ हैं। धारा राज्य की तरफ़ से देवी जी के पूजन की पूरी व्यवस्था है।

धारा नगरी के एक कोने में भोजशाला है। यह एक मसजिद है जिसे मालवा के किसी सुलतान ने ११ वीं वा १२ वीं शताब्दी में बनवाया था। कहा जाता है कि राजा भोज का प्रसिद्ध विद्यालय या श्रीसरस्वती मन्दिर इसी स्थान पर था। इस मसजिद में पत्थरों के कुछ ऐसे टुकड़े लगे हुए हैं जिन पर संस्कृत के कुछ श्लोक खुदे हुये हैं। कहा जाता है कि राजा भोज के समय विद्यार्थीगण इन्हीं श्लोकों पर से अध्ययन करते थे। भोज के समय में धारा नगरी में और राज्य भर में संस्कृत-विद्या का खूब प्रचार था। उस समय में एक भी स्त्री पुरुष अपढ़ नहीं था। परन्तु आज तो भारत के अन्य भागों के समान यहाँ भी अविद्या का राज्य है। भोजशाला से कुछ दूरी पर लाट मसजिद है। इस मसजिद को दिलावर खाँ ने सन् १४६५ में हिन्दू मन्दिरों को तोड़ कर बनवाया था। इस मसजिद के बाहर लोहे की एक बड़ी लाट पड़ी हुई है,

जिसके कारण वह लाट मसजिद कहलाती है। यह लाट एक जयस्तम्भ है। परन्तु किस राजा के समय बनवाई गई थी ठीक पता नहीं चलता।

धार-नरेश का झीरा महल भी एक दर्शनीय स्थान है। यह नगर के कुछ दूरी पर है। इस महल में राजा साहब के माननीय अतिथि ठहराये जाते हैं। महल के कमरे अच्छे सजे हुए हैं। एक कमरे में तीन कांच एक स्थान पर इस तरह लगाये गये हैं कि देखने वाले के ५०, ६० चित्र आमने सामने दो कतारों में दिखाई पड़ते हैं। धारा नगरी में एक हाई स्कूल, लायब्रेरी तथा अस्पताल भी है।

धारा नगरी हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर होते हुए भी वहाँ हिन्दू राजाओं के द्वारा बनाये हुए एक भी प्राचीन मन्दिर, धर्मशाला इत्यादि इस समय मौजूद नहीं हैं। इसका कारण यह है कि नगर तथा राज्य सन् १३१० से १७३२ तक मुसलमान सुलतानों तथा बादशाहों के अधिकार में रहा। इन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ कर मसजिदें बनवा डालीं जो गिरी हुई दशा में अब तक मौजूद हैं।

प्राचीन हिन्दू गौरव और सभ्यता के स्मारक-स्वरूप इस नगर में अब केवल तालाब और गौड़ बावीसा ब्राह्मणों के परिवार हैं। इन ब्राह्मणों को राजा भोज ने यज्ञ कराने के लिए उत्तर भारत से बुलवाया था। और उनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर अपने राज्य में आश्रय दिया था। जब सन् १७३२ में मराठा राज्य की वहाँ

स्थापना हुई तब मराठों ने भी इनका मान किया और इनको आश्रय दिया। राजा के धार्मिक कार्यों में तब से इनका बराबर सम्बन्ध चला आता है। इस जाति के कई सज्जन संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं, जिनके कारण धारा नगरी आज कल भी संस्कृत का एक छोटा मोटा केन्द्र मानी जाती है। श्रीमान् पंडित पूर्णशंकर जी जोशी जो धार के राज्य के वर्तमान मंत्रिमंडल के एक सदस्य हैं इसी जाति के सज्जन हैं। इस जाति के एक और सज्जन श्रीमान् मकुन्द जी शास्त्री ज्योतिर्विद् का राज दरबार में बहुत मान है। अँगरेजी शिक्षा प्राप्त करने की तरफ इस जाति के नवयुवकों का ध्यान थोड़े ही समय से आकर्षित हुआ है। कुछ नवयुवकों ने श्री-गणेश-विद्या-मन्दिर नाम का एक छात्रालय खोल रक्खा है। इसमें विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध किया गया है। और धार्मिक शिक्षा के साथ साथ उनको अँगरेज़ी शिक्षा में भी बहुत सहायता पहुँचाई जाती है। इन नवयुवकों का साहस स्तुत्य है।

श्रीमान् पूर्णशंकर जी उपाध्ये इस जाति के उच्च कोटि के चित्रकार हैं। आप संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् हैं। आपका जन्म संवत् १९११ में हुआ था। आपके पौराणिक चित्र बहुत ही मनोहर और भावपूर्ण होते हैं। सन् १९०४ में बम्बई-आर्ट-सोसाइटी की प्रदर्शनी में आपको एक स्वर्ण पदक मिला था। आप वृद्ध होते हुए भी चित्र लेखन का कार्य प्रतिदिन करते हैं।

धार के महाराजा सर उदाजीराव पवार के० सी० आई० ई० का स्वर्गवास ३० जुलाई सन् १९२६ को सोलन में हुआ। आप अपने सब कार्यों में प्रजा-हित का बहुत ध्यान रखते थे। आप लोकप्रिय भी बहुत थे। धार के वर्तमान राजा आनन्दराव साहब बहादुर नाबालिग हैं। आपका जन्म २४ नवम्बर सन् १९२० को हुआ था। आपकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया है। आजकल राज्य कार्य महारानी साहिबा की देख रेख में मंत्रिमंडल द्वारा होता है।

—दयाशङ्कर दुबे

अभ्यास

१—धारा नगरी के दर्शनीय स्थान कौन कौन हैं?

२—राजा भोज के समय धारा नगरी की क्या दशा थी?

३—धारा नगरी में हिन्दू राजाओं द्वारा बनवाए हुए प्राचीन मन्दिर इस समय क्यों नहीं है?

४—धार राज्य में शिक्षा की क्या दशा है?

१९-रामचन्द्र जी का बालपन

(१)

अवधेश के द्वारे सकारे गई,
सुतगोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोचविमोचन को,
ठगि सी रही जो न ठगे धिक से॥

तुलसी मन रंजन रंजति अंजन,
नैन सुखंजन जातक से।
सजनी शशि में सम सील उभै,
नव नील सरोरुह से विकसे॥

(२)

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि,
मंजु बनी मणिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा,
झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरविंद सों आनन रूपमरंद,
अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जो,
तुलसी जग में फल कौन जिये॥

(३)

तन की द्युति श्याम सरोरुह लोचन,
कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे,
छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ द्युति दामिन ज्यों,
किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेश के बालक चारि सदा,
तुलसी मन मंदिर में विहरैं॥

(४)

कबहूँ शशि माँगत रारि करैं,
कबहूँ प्रतिबिंब निहार डरैं।
कबहूँ करताल बजाय कै नाचत,
मातु सबै मनमोद भरैं॥
कबहूँ रिसियाइ कहैं हठिकै,
पुनि लेत सोई जेहि लाग अरैं।
अवधेश के बालक चारि सदा,
तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं॥

(५)

वर दंत की पंगति कुन्द कली,
अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै,
छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर,
कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्राण करैं तुलसी,
बलि जाउँ लला इन बोलन की॥

(६)

पद कंजनि मंजु बनी पनहीं,
धनुहीं शर पंकज पाणि लिये।
लरिका संग खेलत डोलत हैं,

सरयू तट चौहट हाट हिये ॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेह,
कहाँ जप योग समाधि किये।
नर वे खर शूकर श्वान समान,
कहौ जग में फल कौन जिये ॥

—तुलसीदास

अभ्यास

१—यह पद्य किस पुस्तक से लिया गया है? इसके लेखक का संक्षिप्त परिचय दो।

२—ऊपर के पद्यों में कौन सब से अच्छा है और क्यों?

३—अवधेश से क्या अभिप्राय है? उनके चार बालक कौन कौन से थे?

४—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखो—

रंजित, सरोरुह, कंज, मंजु, अरविंद, अनंग और सकारे।

५—नवनील-सरोरुह, मन-मन्दिर, अवधेश और पङ्कज-पाणि में कौन समास हैं?

२०—सम्राट् अकबर

सन् १५५६ ई० में अपने बाप हुमायूँ के मरने के बाद अकबर बादशाह हुआ। उसका पूरा नाम अबुलमुज़फ़्फ़र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबरशाह था। सिंहासन पर बैठते समय अकबर की आयु १३ बरस ४ महीने थी। इस थोड़ी अवस्था में इतना बड़ा राज्य चलाना मामूली आदमी का काम न था।

अकबर का रंग गोरा और बदन गठा हुआ था। शूरता उसमें कूट कूट कर भरी हुई थी। वह घोड़े का बहुत अच्छा सवार था। एक बेर वह घोड़े की डाक मे दो दिन में २२० मील चला गया। वह आसानी से पन्द्रह, बीस कोस पैदल चल सकता था। रात-दिन में तीन घंटे से अधिक नहीं सोता था।

ऐसा वीर और साहसी, ऐसा मिहनती और होनहार नवयुवक राजसिंहासन पर बैठा। अकबर चाहता था कि पहले अपने बाप के जीते हुए देश का ठीक प्रबन्ध करके उसको अच्छी तरह हाथ में कर लें तब दूसरे नए नए सूबे जीतकर अपना राज्य इतना फैला दें जितना पहले किसी मुसलमान बादशाह के समय में नहीं हुआ था। हुमायूँ का आज्ञापालक नौकर बैरमखाँ खानखाना अकबर की देखभाल करता था। उसको सब प्रकार से सहायता देता था। सिकंदर सूर और हेमू बनिए को हराने में बैरमखाँ ने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। किन्तु एक कवि ने ठीक कहा है "प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं"। बैरम सोचने लगा कि अकबर का राज्य उसके बिना चल ही नहीं सकता। इसी जोश में आकर उसने अकबर पर रोब गाँठना चाहा। राज्यशासन की बागडोर हाथ में लिए हुए, सिंहासन पर बैठकर मस्तक पर मुकुट धारण किए हुए, कोई भी भाग्यवान् पुरुष ऐसा अपमान नहीं सह सकता था। अकबर इस अपराध को कैसे क्षमा कर सकता था।

अकबर शिकार के बहाने दिल्ली चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने घोषणा कर दी कि राज्य का कुल काम मैंने अपने हाथ में लिया और बैरमखाँ को अलग कर दिया। बैरमखाँ ने घबराकर मक्के जाने का विचार किया; किन्तु फिर उसके मन में लालच समाया। कुछ पल्टन इकट्ठी कर के उसने पंजाब में बादशाही पल्टन से लड़ाई की। युद्ध में हार कर वह अकबर के पैरों पर गिर पड़ा और रोने लगा। दयावान् बादशाह ने उसको उठा कर अपनी दाहिनी ओर बैठाया और उसका पुराना पद देने को कहा। परन्तु बैरम ने लज्जा के मारे हिन्दुस्तान में रहना स्वीकार नहीं किया। मक्के जाते समय गुजरात में एक पठान के हाथ से वह मारा गया। उस पठान के बाप को बैरमखाँ ने पहले कभी मारा था। वह वीर पितृभक्त बाप का बैर लेने के लिए तैयार था। अपना कार्य करके वह पितृ-ऋण से मुक्त हुआ। कहा भी है "बाप का बैरी जो नहिं मारे नाहक जन्म विधाता दीन।" यही सोच कर अंगद ने अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी से बाप का बैर लेना अपना कर्त्तव्य समझा। अपनी दूरदर्शिता और राजनीतिपटुता के कारण वह जगत् प्रसिद्ध है, बहादुरी में उसके जोड़ के बहुत थोड़े बादशाह हुए हैं, परतन्त्र तथा विधर्मी जाति के साथ जितनी सहानुभूति अकबर ने दिखलाई है उतनी और किसी मुसलमान बादशाह ने नहीं दिखलाई है, उसका विद्या-प्रेम श्लाघनीय है, पराजित शत्रुओं के प्रति उसने सदा दया दिखलाई, लेकिन उसकी कामुकता ने सब पर

पानी फेर दिया। भारतवर्ष चरित-प्रधान देश है। चाहे आज हम कितने ही गिर गए हों लेकिन हमारे साहित्य और हमारे इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि सदाचार से गिरने की अपेक्षा पर्वत से गिर कर, अग्नि में जलकर मर जाना अच्छा है। हमारे यहाँ विवाह सम्बन्ध बड़ा ही पवित्र कर्तव्य माना गया है। यही कारण है कि अकबर की तरह दयावान् और उदार राजा की जगह जगह निन्दा होती है। बैरमखाँ के पुत्र अब्दुलरहीम को अच्छी शिक्षा दी गई। आप अकबर की सभा के नवरत्नों में से थे। आपको सेनापति का पद मिला था। आप बड़े परोपकारी जीव थे। आपने बड़ी चेष्टा की कि राणा प्रताप और अकबर में युद्ध न छिड़े। लेकिन मान का अपमान और सिसोदिया कुल की शान के कारण लड़ाई रुक नहीं सकती थी। आप ही हिन्दी-संसार के रहीम कवि हैं। आपके दोहे बड़े ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। आपकी अनूठी उपमाओं से आपकी सहृदयता और अनुभव का पता लगता है। आपके तीन अनूठे पद नीचे लिखे जाते हैं।

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥
रहिमन बिगरी आदि की, बने न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, छुटो न बावन नाम॥
तैं रहीम मन आपनो, कीनो चारु चकोर।
निशि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥

बैरमख़ाँ के चले जाने के कुछ ही दिन बाद अकबर ने राज्य पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया। अब उसे नए नए सूबे जीतने का हौसला हुआ। अजमेर, ग्वालियर और लखनऊ पराजित हुए। मालवा अभी तक पठान बादशाहों के सूबेदार बाजबहादुरख़ाँ के अधिकार में था। उसको जीतने के लिए आदमख़ाँ भेजा गया। बाजबहादुरख़ाँ हार कर भाग गया। उसकी स्त्री, जो किसी हिन्दू राजा की लड़की थी, आदमख़ाँ के हाथ पड़ गई। किन्तु स्त्री धर्मात्मा थी। मालूम नहीं किस कारण एक बार अवश्य वह मुसलमान की स्त्री हो गई थी। लेकिन वह एक को छोड़ कर दूसरे की नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने विष खाकर प्राण दे दिए। मालवा अकबर के अधिकार में आ गया।

--मन्नन द्विवेदी

अभ्यास

१—अकबर में कौन कौन से ऐसे गुण थे जिसके कारण वह इतना विशाल राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ।

२—बैरमख़ाँ कौन थे? इनके पुत्र अब्दुलरहीमख़ाँ ख़ानख़ाना का संक्षिप्त चरित अपनी नोट बुक में लिखो।

३—श्लाघनीय, आज्ञापालक, कूट कूट कर भरी है इनके भावार्थ समझाओ और इनका प्रयोग अपनी भाषा में करो।

२१—युवा सन्यासी

(१)

गुण-निधान मतिमान सुखी,
सब भाँति एक लवपुर-वासी।
युवा अवस्था बीच विप्रकुल,
केतु हुआ है सन्यासी॥
विविध रीति से उस विरक्त को,
सुहृद बन्धु समुझाय थके।
गङ्गा जी के प्रवाह ज्यों पर,
उसे न वे सब रोक सके॥

(२)

वृद्ध पिता माता की आशा,
बिन व्याही कन्या का भार।
शिक्षा-हीन सुतों की ममता,
पतिव्रता नारी का प्यार॥
सन्मित्रों की प्रीति और,
कालिज वालों का निर्मल प्रेम।
त्याग, एक अनुराग किया,
उसने विराग में तज सब नेम॥

(३)

"प्राणनाथ! बालक सुत दुहिता",
यों कहती प्यारी छोड़ी।

" हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !! "

यों रोती महतारी छोड़ी ॥

चिर सहचरी " रियाजी " छोड़ी,

रम्य तटी रावी छोड़ी ।

शिखा-सूत्र के साथ हाय !

उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥

(४)

धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ,

इस बड़भागी ने जन्म लिया ।

धन्य जनक जननी जिसके घर,

इस त्यागी ने जन्म लिया ॥

धन्य सती जिसका पति मरने,

से पहले हो जाय अमर ।

धन्य धन्य संतान पिता,

जिनका जगदीश्वर पर निर्भर ॥

(५)

शोकग्रसित हो गई लवपुरी,

उसकी हुई बिदाई जब ।

द्रवीभूत कैसे न होय मन ?

सन्यासी हो भाई जब ।

खिन्न अश्रुमुख वृद्ध लगे,

कहने " मङ्गल तव मारग हो ।

जीवन्मुक्ति सहाय ब्रह्म-
विद्या में सत्वर पारग हो" ॥
(६)
कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर·
कहा कि प्यारे ! सुन लेना।
बात अन्त को आज हमारी,
ज़रा ध्यान इस पर देना ॥
समदर्शी ऋषि, मुनियों को भी,
भारत प्यारा लगता था।
इस कारण यह विद्या-बल,
में जग से न्यारा लगता था।
(७)
सर्व त्याग कर महा-भाग जो,
देशोन्नति में दे जीवन।
धन्यवाद देते हैं देवगण,
भी उसको हो प्रमुदित मन ॥
अपनी भाषा भेष भाव औ,
भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तम, समझो,
उससे भली लुगाइन को ॥
(८)
"एवमस्तु" कर उच्चारन इन,
सब के उसने उत्तर में।

कहा "अलविदा" और चला,
वह मन भावन उस औसर में।
लगे वर्षने पुष्प और जय,
जय की तब हो उठी ध्वनी।
मानो भिक्षुक नहीं, वहाँ से,
चला विश्व का कोई धनी॥

(९)

ज्यों नगरी में होय स्वच्छता,
जब आता है कोई लाट।
त्यों वन पर्वत प्रकृति परिष्कृत,
हुए समझ मानों सम्राट॥
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से,
वारिद ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दई सलामी,
आतपत्र वृक्षों ने किया॥

(१०)

विहंग कुल ने निज कल-रव से,
उसका स्वागत गान किया।
श्वापद शान्त हुए मृग गण ने,
दक्षिण में आ मान किया॥
श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने,
उसको झुक कर किया प्रणाम॥

पुष्पितलता और बिरवों ने,
कुसुम बिछाये राह तमाम ॥

(११)

खड़ा हिमालय निज उन्नत,
मस्तक पर तत्पद धारन को।
हुई तरङ्गित सुरधुनि तब,
अभिषेक पुनीत करावन को ॥
शिक्षा देती मानो सबको,
जननी-सदृश प्रकृति सारी।
विषय-विरक्त ब्रह्म-चिंतन-रत,
नर के सब आज्ञाकारी ॥

—माधवप्रसाद मिश्र

अभ्यास

१—जब युवा सन्यासी चला तो प्रकृति ने उसकी क्या सहायता की? राजा और सन्यासी में कौन बड़ा है?

२—इनके अर्थ लिखो—

जननी-सदृश, विरक्त, श्रेणीबद्ध, आतपत्र, वारिद, दुहिता, समदर्शी, अश्रुमुख, खिन्न।

३—समासों के नाम लिखो—

जननी-सदृश, विप्रकुल-केतु, जनक-जननी, भेष-भाव, विद्या-बल, विषय-विरक्त।

२२—सभ्यता की कथा

धर्म, जाति, भाषा, रहन-सहन और परम्परा आदि बातें भारत के पाश्चात्य राष्ट्रों का रूप देने में बाधक हैं। परन्तु पाश्चात्यों के संसर्ग के कारण अब उनके निवासियों की कट्टरता बहुत कुछ दूर होने लगी है और उन पर भी देशकाल का प्रभाव पड़ने लगा है। साँड़, बन्दर, लता, वृक्ष आदि के पूजक तथा टोना-जादू, भूत-प्रेत के मानने वाले भी धीरे धीरे सीधे रास्ते पर आने और मिथ्याविश्वास का परित्याग कर आधुनिक सभ्यता के महत्व को अङ्गीकार करने लगे हैं।

भारत के एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त वालों को तथा एक धर्म के लोग दूसरे धर्म वालों को भारतीयता के नाते से नहीं देखते। तो भी यह बात कोई विशेष महत्व नहीं रखती, दूसरे देशों में भी यह अवस्था किसी न किसी परिणाम में मौजूद है और भारत में तो अब इस दूषित भावना का भी धीरे धीरे अभाव हो रहा है।

जात-पाँत का भेद-भाव भारत में वास्तव में प्रबल था। परन्तु अब वह धीरे धीरे शिथिल पड़ रहा है और यदि यही क्रम जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं जब यह प्राचीन संस्था यहाँ नाम-मात्र को रह जाय। क्योंकि आवश्यकता का बोझ बहुत भारी होता है। वह अपने आप ही सब बातें करा लेती है। कहते हैं कि सन् १७३६ में जब पहले मेडिकल कालेज भारत में खुला था तब अधिकारियों ने यह समझा था कि हिन्दू लोग यहाँ पढ़ने नहीं

आयेंगे, क्योंकि वे मुर्दा या हड्डी नहीं स्पर्श करेंगे। परन्तु जब इस कालेज के पहिले हिन्दू विद्यार्थी ने एक लाश में अपना चाकू घुसेड़ा था तब उसके स्वागत में फोर्ट विलियम क़िले से एक बाढ़ दागी गई थी। यह बात सच भले ही न हो, पर आज वही हिन्दू मेडिकल कालेजों में भर्ती होने के लिये इतनी अधिक संख्या में दिखाई देते हैं; कितने ही बेचारे स्थान न पाने पर निराश होकर लौट जाते हैं। जहाँ पहले समुद्र-यात्रा करना पाप समझा जाता था, वहाँ आज लाखों की संख्या में भारतीय समुद्र-यात्रा करते हैं। पिछले युद्ध में तो भारतीयों ने खाद्याखाद्य की भी अधिक परवा नहीं की। युद्ध से लौटे हुए बहुसंख्यक सैनिकों के रहन-सहन में इतना परिवर्तन हो गया है कि अब उनके विरुद्ध बोलने का साहस समाज भी नहीं करता। ये सारे परिवर्तन इस बात के द्योतक हैं कि प्राच्य देशों में क्रान्ति की एक लहर इस समय बह रही है। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि प्राच्य देश जाग्रत हुए हैं और अब वे पाश्चात्य के समक्ष खड़े होने को तैयार हो गये हैं। यह शुभ लक्षण है सही; किन्तु हमें दूसरी ओर आँख नहीं मूँद लेनी चाहिये। भारत में जाग्रति के साथ जो पाश्चात्य विलासिता का भाव फैल रहा है उस पर हमें दृष्टि देनी चाहिये। साहित्य और समाज दोनों में एक तीव्र लोलुपता का भाव प्रविष्ट हो रहा है। इस मनोभाव का मूल कारण पश्चिमीय सभ्यता का अव्यर्थ प्रभाव है। अतएव प्रश्न यह होता है कि इस प्रभाव से प्राच्य देशों को कहाँ तक लाभ होने की सम्भावना है।

वास्तव में सारे संसार में आजकल योरोपीय सभ्यता का ही बोलबाला है। प्राचीन सभ्य जातियाँ तक इसके मनोमोहक रूप की ओर आकृष्ट हो गई हैं। यही नहीं, वे उसके पाश में पूर्ण रूप से आबद्ध हो गई हैं। परन्तु यह सभ्यता वास्तव में है कौन सी वस्तु। लोग इसकी तरह तरह से व्याख्या करते हैं। उन व्याख्याओं में एक व्याख्या यह भी है कि यह सभ्यता और कुछ नहीं केवल 'सुखवाद' का विकसित रूप है और इसका यह रूप अन्यत्र चाहे न हो; किन्तु प्राचीन असभ्य जातियों में तो अधिक आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुका है। उदाहरण के लिये भारत में तो इसकी सुखवादात्मक व्याख्या भले प्रकार घटित होती है।

सभ्यता के केन्द्रस्थल भव्य नगरों में आधुनिक सभ्यता का नग्नरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। जहाँ एक ओर धनाधिपों की गगन-चुम्बी अट्टालिकायें, देवोपम उद्यान और विलास के क्रीडा-क्षेत्र नाटक घर आदि उसके गौरव का परिचय दे रहे हैं, वहीं इन सब बातों के सन्निकट दीन-दुखियों की गन्दी कोठरियाँ उनके निवासियों की करुणाजनक स्थिति का चित्र उपस्थित करके उसके प्रत्यक्ष पैशाचिक रूप का परिचय प्रदान करती हैं। इस प्रकार सभ्य मनुष्य-समाज के अन्तर्गत उसका अधिकांश भाग आधुनिक सभ्यता का रसास्वादन करने से सर्वथा वञ्चित रहता है। उसके अधिकारी उस समाज का एक अल्प भाग ही हैं। इसीसे

अधिकांश श्रेष्ठ जन इस सभ्यता को एकाङ्गी समझ कर सुख-वाद का रूपान्तर घोषित करते हैं।

वास्तव में यह सभ्यता पूँजीवादियों की सभ्यता है। संसार इसका यह प्रथम आगमन नहीं है। प्राचीन काल में भी भिन्न भिन्न समयों में इसका आविर्भाव होता रहा है। उस समय भी इसके कर्णधार यही पूँजीपति ही थे। अतएव समय समय पर संसार में महामारी के समान इसका अवतार होता ही आया है और इससे कभी मानवजाति का उपकार नहीं हुआ है। अपनी उन्नति के काल में प्रत्येक समय इसने संसार में विनाश और तबाही के रोमहर्षक अभिनव दृश्य उपस्थित किये हैं। इस समय भी यह अपने उसी पैशाचिक रूप का परिचय दे रही है, जो हम अपने आसपास अहर्निश प्रगट रूप में देख सकते हैं।

प्राचीनतम मिस्र की ही सभ्यता की बात लीजिये। मिस्र की समुन्नत दशा में कुछ ही भाग्यशालियों के सुख की व्यवस्था थी। शेष इतर जन पशुओं की भाँति अपना जीवन व्यतीत करते थे। इसीसे हज़रत मूसा को दीन यहूदियों का पक्ष लेना पड़ा। उन्होंने मिस्र के तत्कालीन शासकों का तिरस्कार किया। उनके क्रोध की मूसा महाराज ने ज़रा भी परवा न की। दीनों का पक्षग्रहण करने के कारण ही आज भी मूसा महाराज लाखों मनुष्यों के हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। परन्तु विलास-लोलुप स्वसुखापेक्षी मिस्र के शासकों का नाम तक लेने वाला आज कोई नहीं रह गया। इसी प्रकार सुसभ्य रोमन लोगों ने भी दीन दुखियों की रत्ती भर परवा

नहीं की। उनकी सभ्यता की रचना यद्यपि उन्हीं तिरस्कृत दीन दुखियों का रक्त निचोड़ कर ही हुई थी। रोमन-सभ्यता के सूचक जो विशाल कलात्मक इमारतें आज भग्न दशा में पड़ी हुई हैं वे सब केवल मुट्ठी भर भाग्यशालियों के विनोदाश्रय मात्र हैं। पाम्पिआई और हरकूलेनियम प्राचीन रोम के धन कुबेरों के विलासालय थे। इन तथा दूसरे स्थानों में तत्कालीन धनिकगण अपने ऐश्वर्य का मुक्तहस्त होकर उपभोग किया करते थे और उनके धनहीन तथा दरिद्र लाखों देश-बन्धु उनकी पैशाचिक लीला को टुकुर टुकुर देखते रहते थे। उन्हें वैसे सुख दुर्लभ थे।

अभी पिछले समय में मुसलमानी सभ्यता का जो उदय हुआ था वह भी पहले की सभ्यताओं का प्रतिबिम्ब मात्र था। दरिद्र, धर्मान्ध अरबी जब अटलांटिक महासागर के किनारे के प्रशान्त महासागर तक अपनी विजय-वैजयन्ती फहराने लगे तब उन्हें भी इस फ़क़ीरों की सभ्यता को सुखवाद का रूप देना पड़ा। स्पेन के अलहम्ब्रा से लेकर चीन तक उनके ध्वंसावशेष उपर्युक्त बात का समर्थन करते हैं।

अब रही योरोपीय सभ्यता सो इसके प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान योरोपीय राष्ट्र हैं।

—नरेन्द्रनाथ

अभ्यास

१—प्राच्य देशों में इस समय क्रान्ति की कौन सी लहर वेग से बह रही है?

२—किन बातों से सिद्ध होता है कि प्राच्य देश अब जाग रहे हैं ?

३—पूँजीपतियों की सभ्यता से क्या समझते हो ?

४—योरोपीय सभ्यता का सच्चा रूप क्या है ?

२३—वन-विहंगम

(१)

बन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं ;
दिन-रात न छोड़ता एक को दूसरा, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रही ;
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं।

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ ;
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ।
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ ;
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ।

(३)

सुविशाल बनों में उड़े फिरते अवलोकते प्राकृति चित्र छटा ;
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा।
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा ;
कहीं कुञ्ज लता के वितान तने घने फूलों का सौरभ था सिमटा।

(४)

झरने झरने की कहीं झनकार फुहारा का हार विचित्र ही था;
हरियाली निराली न माली लगा, तब भी सब ढंग विचित्र ही था।
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था;
बस जान लो, सात्विक सुन्दरता, सुख संयुत शांति का चित्र ही था।

(५)

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम गृहस्थ निवास बने हुए थे;
खपरैलों में, कद्दू, करैलों की बेल के .खूब तनाव तने हुए थे।
जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पत्ती घरों में घने हुए थे;
सब ओर स्वदेश-स्वजाति समाज भलाई के ठान ठने हुए थे।

(६)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था छवि छाई बसंत की कानन में;
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में मन में।
निकले थे कपोत कपोती कहीं, पड़े झुण्ड में घूम रहे बन में;
पहुँचा यहाँ घोंसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में।

(७)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से;
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे अभिज्ञ न थे छल से।
नहीं जानते थे कि यहाँ पर है, कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से;
बस फाँस के बाँस के बन्धन में कर देगा हलाल हमें बल से।

(८)

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा तब वे घबरा उठे बन्धन में;
इतने में कबूतरी आई वहाँ, दशा देख के व्याकुल हो मन में।

कहने लगी " हाय हुआ यह क्या," सुत मेरे हलाल हुए वन में ;
अब जाल में जाके मिलूँ इन से सुख ही क्या रहा इस जीवन में ।

(९)

उस जाल में जाके बहेलिए के ममता से कबूतरी आय गिरी ;
इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोंसले में थी विपत्ती निरी ।
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ घटना की घटा वह घोर घिरी ;
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ।

(१०)

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा हा ! अति कष्ट हुआ ;
निबलों ही को दैव भी मारता है ' य ' प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ।
सब सूना किया चली छोड़ प्रिया सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ;
इस भाँति अभागा अतृप्त ही में सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ।

(११)

कल कूजन कैलि कलोल में मस्त हो बच्चे मुझे जो सुखी करते ;
जब देखते दूर से आता मुझे किलकारियाँ मोद से जो भरते ।
समुहाय के धाय के आयके पास उठाय के पंख नहीं टरते ;
वही हाय हुए असहाय अहो, इस नीच के हाथ से हैं मरते ।

(१२)

गृहलक्ष्मी नहीं जो जगाए रहा करती थी सदा सुख कल्पना को ;
शिशु भी तो नहीं जो उन्हीं के लिए सहता इस दारुण वेदना को ।
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यम-यातना को ।
अब मैं हीं वृथा इस जीवन को रख कैसे सहूँगा विडंबना को ।

(१३)

यहाँ सोचता था यों कपोत वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया ;
गिर लोट गया धरती पर पक्षी बहेलिये ने मन माना किया।
पल में कुल का कुल काल कराल ने यों यमलोक को भेज दिया ;
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह देखो निदर्शन है बढ़िया।

—रूपनारायण पाण्डेय

अभ्यास

१—वन-विहंगम के पाठ से क्या शिक्षा मिलती है ?

२—कबूतरी और कबूतर की कथा वर्णन करो।

३—शिकारी ने बच्चों तथा कबूतरी को कैसे पकड़ा ?

४—पहले पद्य की शब्द निरुक्ति (पद व्याख्या) करो।

२४—बर्फ़ की बहार

जाड़े के दिन आ गये हैं। पहाड़ में बर्फ़ गिरने लगी है। चलो, जाकर बाहर देखें। कैसा सुन्दर दृश्य है ! किस अप्सरा-लोक से इस खिन्ना, दीना, मलिना, तापसी पृथ्वी-माता के ऊपर शीतल-पुष्पों की अविरल वर्षा हो रही है ! किस देवता ने ऐसे स्वच्छ, श्वेत कुसुमों का अक्षय भांडार खोल दिया।

यह देखो ! कैसा सुन्दर, स्वच्छ प्रकाश समस्त विश्व में व्याप्त हो रहा है ! आकाश यद्यपि घनघटा से आच्छन्न है, आसपास के पहाड़ यद्यपि कुहरे से ढके हुए हैं, तथापि यह कैसा उज्ज्वल

बर्फ़ से ढका हिमालय

आलोक अपनी झलक दिखला रहा है। किस अलबेली परी की यह मंद मधुर मुसकान है। हे स्वर्ग-निवासिनी कल्याणीया माता! आज अचानक इस मर्त्य-लोक में तुम्हारा पुण्य आगमन देखकर बच्चों के हृदय की कली-कली खिल गई है। धूलि से मलिन पृथ्वी के ऊपर तुम्हारी शुभ्र, सुनिर्मल, कोमल शय्या बिछी हुई है, उसके ऊपर छोटे छोटे बच्चे आनन्द से उछल कूद मचा रहे हैं। तुम्हारी यह शय्या दुग्ध के फेन मे भी अधिक श्वेत है। शरत्काल में चन्द्रमा के प्रकाश से उज्ज्वल, शुभ्र मेघ की शोभा उसकी सुन्दरता के आगे तुच्छ है। यह अनुपम है।

यह देखो! वहाँ पर बच्चे बर्फ़ का मन्दिर बनाने में लगे हैं। किस अलबेले देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा आज इसके भीतर होगी। बच्चे जाड़े से काँप रहे हैं या देवता की भक्ति से गद्गद् होकर विह्वल हो रहे हैं? उनकी आँखें किस उल्लास से दीप्त हो रही हैं?

हरे राम! यह क्या मूर्ति की स्थापना पूरी तरह से होने भी न पाई थी कि वही 'भक्त' लड़के बर्फ़ के गोले बना कर उसी मूर्ति के ऊपर बरसाने लगे हैं, मनुष्य-प्रकृति ऐसी ही चंचल होती है, इसमें संदेह नहीं। जिसके साथ हम एक बार प्रीति लगा कर मित्रता करते हैं, कुछ ही समय के बाद उसी के विनाश में लग जाते हैं।

सर्वत्र कैसी शांति व्याप्त है। इस नीरवता में बीच बीच में बच्चों की किलकारी ऐसी जान पड़ती है, जैसे अर्द्धरात्रि में

पक्षीगण किसी कारण से चौंक चौंक कर निद्रा से जाग पड़ते हैं। हिम-कुसुमों की वर्षा उसी अविरल गति से, निःशब्द चली जाती है। क्या इस सन्नाटे में आज स्वर्ग-मर्त्य का मिलन होगा?

लड़को! पहाड़ में जो बर्फ गिरती है वह क्या चीज़ है, बिना देखे तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। गर्मी के दिनों में तुम जिस बर्फ़ का पानी पीते हो केवल ठंढक में उसकी तुलना हम पहाड़ी बर्फ़ से कर सकते हैं, अन्यथा, सूरत-शकल, रूप-रंग और आकृति-प्रकृति में दोनों में ज़मीन-आसमान का अंतर पाया जाता है। पहाड़ी बर्फ़ धुनी हुई रुई से भी ज्यादा सफेद होती है और रुई की तरह नर्म भी होती है। उस बर्फ़ से ज्यादा सुफेद कोई भी चीज़ दुनिया में हो सकती है, इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। जब वह ताज़ी होती है तो बहुत कोमल होती है—फूल की तरह। पहाड़ी लोग गुड़ के साथ उसे खाते हैं। पर जब आसमान साफ होने पर उसके ऊपर पाला पड़ जाता है तो वह पत्थर से भी ज्यादा सख़्त हो जाती है और खाने पर शरीर को हानि पहुँचाती है। यद्यपि लोग धूप में बैठ कर उसे भी खाते हैं। बर्फ़ के गिरने पर सारी पृथ्वी ऐसी उज्ज्वल दिखलाई देती है जैसे चाँदनी बिछी हो और रात को जब चन्द्रमा का प्रकाश उसके ऊपर पड़ता है तो वह दृश्य ऐसा अनुपम हो जाता है कि शायद परिस्तान भी उसके आगे कोई चीज़ नहीं। देख देखकर आँखें नहीं थकतीं। ऐसा मालूम होता है कि संसार का सब कारबार झूठा है, और केवल यही दृश्य, यही सौंदर्य सत्य है।

जब मैं छोटा बच्चा था, तो किताबों में उत्तरी ध्रुव के निकट रहने वाले एस्किमो लोगों के सम्बन्ध में अनेक बातें पढ़ा करता था। उस देश में बारह महीने बर्फ़ रहती है। वह देश ही बर्फ़ का है। एस्किमो लोगों के मकान भी बर्फ़ के ही होते हैं। मुझे उन लोगों के जीवन पर ईर्ष्या होती थी। मैं उनके कष्टों की बात नहीं सोचता था और उन्हें बड़ा सुखी समझता था। मुझे इस बात पर बड़ा दुःख होता था कि ईश्वर ने मुझे क्यों ऐसे देश में पैदा नहीं किया। मैं सोचता था कि जिस व्यक्ति को आँखों के आगे रात दिन बर्फ़ का दृश्य वर्तमान है, उसे भूख-प्यास कभी नहीं सता सकती! मैं बड़ा नादान था।

योरप के सभी लड़के बर्फ़ की बहार से परिचित रहते हैं क्योंकि वहाँ हर साल जाड़ों में बर्फ़ गिरा करती है। पर हमारे देश के बच्चे इस सम्बन्ध में दुर्भागी हैं। जिन लड़कों ने अँगरेज़ी की कुछ भी कवितायें पढ़ी होंगी उन्होंने अवश्य बर्फ़ का उल्लेख पाया होगा। योरप के प्राचीनतम कवियों ने भी बर्फ़ का उल्लेख किया है। ग्रीस देश के महाकवि होमर ने अपने "इलियड" शीर्षक महाकाव्य में बर्फ़ का ज़िक्र किया है। युलिसीस नाम का एक वीर ग्रीक राजा जब कभी बोलता है तो उसके मुँह से निकले हुए शब्दों की उपमा देते हुए वह कवि उन्हें घने हिम-कण बतलाता है। शेक्सपियर के नाटकों तथा वर्ड्सवर्थ, शेली आदि विलायती कवियों की कविता में भी बर्फ़ का उल्लेख है। पर हमारे भारतीय कवि ने जब

कभी तुषार-पात (बर्फ़ का गिरना) देखा ही नहीं तो वे उसके सम्बन्ध में लिखते कैसे ? पर कालिदास ने हिमालय का वर्णन किया है। उनके " कुमारसम्भव " काव्य में तो अधिक वर्णन हिमालय का ही है। बहुत सम्भव है वे हिमालय प्रदेश के ही निवासी थे और या तो काश्मीर की तरफ रहते थे, या युक्तप्रांत के उत्तरी पहाड़ों में, इतिहासज्ञों ने ऐसा अनुमान किया है। पर यह निश्चय है कि युवावस्था में वह पहाड़ छोड़ कर नीचे देश (मैदान) को चले आये थे और उज्जैन में रहने लगे थे। किन्तु अपनी जन्मभूमि की याद उन्हें बार बार आ जाया करती थी। इसलिए उन्होंने अपने मेघदूत काव्य में अलकापुरी के बहाने अपने जन्म-स्थान की ही गुण-गाथा गाई है। कुछ भी हो, हिमालय पर्वत बारह मास हिम से ढके रहते हैं। और उस हिम का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है कि वह " राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः " है। अर्थात् " प्रति दिन शिव जी के अट्टहास (विकट हँसी) के ढेर के समान इकट्ठा रहता है। " संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का यह नियम है कि हँसी और यश की उपमा किसी श्वेत और शुभ्र वस्तु के साथ दी जाती है। इस हिसाब से कालिदास की यह उपमा अनुपम है। शिव जी हिमालय-पर्वत (कैलाश) में रहते हैं। उनका हास्य बड़ा विकट होता है, और जिसने देखा है वह जानता है कि बर्फ़ में चारों तरफ़ ढके हुए हिमालय पर्वत का दृश्य भी कम विकट नहीं होता।

कुछ भी हो, कालिदास ने गिरती हुई बर्फ़ का वर्णन कहीं नहीं किया है। इसका कारण क्या है, हम कह नहीं सकते। लड़को, यदि तुम्हारा झुकाव कविता की ओर है, तो मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि अपने जीवन में एक बार जाड़े के दिनों में पहाड़ की सैर करके तुषार पात के दृश्य को अवश्य देख आना। उसमें तुम्हारे हृदय में बड़े बड़े अच्छे अच्छे विचार और भाव पैदा होंगे।

—इलाचन्द्र जोशी

अभ्यास

१—बर्फ़ कैसे बनती है और वह पहाड़ों पर किस समय गिरती है ?

२—बर्फ़ लोगों के किस काम आती है ?

३—भारतीय कवियों ने बर्फ़ का वर्णन क्यों कम किया है ?

४—मनुष्य प्रकृति चञ्चल क्यों कही गई है ?

५—'इलियड्' 'कुमार सम्भव' और 'अलकापुरी' के विषय में क्या जानते हो ?

२५—घनश्याम देखे ?

मुझे मिले एक महानुभाव,
बोले अजी 'श्रीवर' यह बताओ।
क्या स्वर्ग में या यमुना-निकुञ्ज में,
कहीं किसी ने घनश्याम देखे ?
क्या वे बसें मन्दिर में नृपों के,
या दृष्टि आते कवि-कल्पना में।

या योगियों की गहरी समाधि में,
कभी किसी ने घनश्याम देखे ?
मैंने कहा आज निकुञ्ज शून्य है,
सूनी पड़ी है व्रज-बीथिकाएँ।
न कूल में श्रीयमुना-निकुञ्ज में,
कहीं किसी ने घनश्याम देखे।
न तो बसें क्षीर-समुद्र ही में,
न द्वारका के कनकाभिराम में।
न मन्दिरों के गृह गर्भ ही में,
न स्वर्ग ही में घनश्याम देखे।
न योगियों की गहरी समाधि में
न ज्ञान के तत्वमसि प्रमाण में।
न ध्यान में औ कवि की न तान में,
न मान ही में घनश्याम देखे।
अवश्य ही वे बसते वहाँ है,
जहाँ दया की सरिता अशेष है।
है नित्य आनन्द विराजता जहाँ,
मैंने वहीं श्रीघनश्याम देखे।
छाया जहाँ नित्य पवित्र प्रेम है,
जहाँ यही एक अनन्त नेम है।
निष्काम राधा सम प्रेम है जहाँ,
प्यारे वहीं श्रीघनश्याम देखे।

दरिद्र के जीर्ण-जरा-कुटीर में,
किसान के श्यामल शून्य खेत में।
विश्वास में निष्ठ-प्रतिज्ञ भक्त के,
प्रसन्न होते घनश्याम देखे।
दुःखी जनों की गहरी उसाँस में,
औ पीड़ितों की करुणार्द्र आह में,
सहायता-पेक्ष्य सनीर नैन से,
हैं झाँकते श्रीघनश्याम देखे।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

अभ्यास

१—लेखक के अनुसार घनश्याम का दर्शन किन किन स्थानों में होता है?

२—कनकाभिराम, घनश्याम, जीर्ण-जरा-कुटीर में समास बताओ।

३—अर्थ लिखो—

निकुञ्ज, कूल, निष्काम, जरा और सहायतापेक्ष्य।

२६—रेल

इस पाठ में रेलों के बारे में विचार किया जायगा। डाक का रेलों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रेलों की सहायता से ही डाक का वर्तमान प्रबन्ध चल रहा है।

यात्रा की सुविधा—रेलों से लोगों को यात्रा करने की बड़ी सुविधा हो गयी है। पहले आदमी पैदल जाते थे, या घोड़ों पर सवार होकर, या बैलगाड़ी और घोड़ागाड़ी आदि में। इनमें सफर तय करने में समय बहुत लगता था तथा थकावट अधिक होती थी। अब आजकल साइकिल, मोटर, ट्राम्बे, आदि अनेक सवारियाँ चल पड़ी हैं। हवाई जहाजों का भी प्रचार बढ़ता जा रहा है। परन्तु सर्वसाधारण के लिये लम्बी लम्बी यात्रा करने की और सवारियों में इतनी सुविधा नहीं होती जितनी रेलों में। तुम रोज़ स्टेशनों पर देखते होंगे कि हज़ारों आदमी रेल का टिकट लेकर एक जगह से दूसरी जगह जाते आते हैं।

प्रत्येक टिकट पर यह छपा रहता है कि वह किस स्टेशन से किस स्टेशन तक के लिये है और उसका मूल्य क्या है। उस पर तारीख़ और नम्बर भी लिखा रहता है। यदि किसी का टिकट खो जाय तो नम्बर और तारीख़ बताने से उसका काम चल सकता है, नहीं तो उसे फिर दाम भरने पड़ते हैं।

रेलों से अन्य लाभ—स्टेशनों पर सवारी गाड़ी के अलावा तुमने मालगाड़ियाँ भी देखी होंगी। इनमें हज़ारों मन माल इधर से उधर भेजा जाता है। इस प्रकार रेलों से व्यापार की ख़ूब वृद्धि होती है। यदि देश में एक जगह अकाल पड़ रहा हो तो खाने के पदार्थ दूसरी जगह से, जहाँ वे अधिक हों, जल्दी ही उस जगह

लाये जाकर, बहुत से आदमियों को भूखा मरने से बचाया जा सकता है। ❀

रेलों द्वारा सरकार को राज्य प्रबन्ध के लिए पुलिस या फौज एक जगह से दूसरी जगह भेजने में भी बड़ी सुविधा तथा किफायत होती है। इसके अतिरिक्त रेलों से मनुष्यों के विचारों तथा रहन सहन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। देश के जिन भागों में रेलें चलती हैं, वहाँ के लोगों को एक दूसरे से मिलने का अवसर बहुत आता है। भिन्न जातियों के तथा अलग अलग धर्मों को मानने वाले आदमी परस्पर मिलने जुलने से एक दूसरे को अधिक जानने लगते हैं और उनमें सहयोग और सहानुभूति का भाव बढ़ जाता है। भारतवर्ष में छूत छात के विचारों को दूर करने में रेलों ने बड़ी सहायता की है।

रेलों का विस्तार—भारतवर्ष में रेलों का काम लार्ड डलहौज़ी के समय में आरम्भ हुआ। बम्बई से चलने वाली जी० आई० पी० रेलवे, तथा कलकत्ते से चलने वाली ईस्ट इंडियन रेलवे सब से पुरानी हैं। ये १८४९-५० में आरम्भ हुई। इन्हें बनवाने में सरकार ने इस बात का ठेका लिया कि कम्पनियाँ उसकी सम्मति से जो

❀ रेलों से एक हानि भी है। बहुत से पदार्थों को व्यापारी उन देशों को भेज देते हैं, जहाँ वे मँहगे हों, फिर वे पदार्थ हमारे देश में पहले की तरह सस्ते नहीं रहते, विदेशों में निर्यात हो जाने के कारण उनका भाव बढ़ जाता है।

रुपया रेलों के काम में ख़र्च करेंगी, उस पर उन्हें पांच फी सदी मुनाफ़ा मिलेगा, यदि इससे कम रहा तो सरकार उसकी भरपायी कर देगी और जो ज्यादा रहा उसमें से आधा सरकार लेगी और आधा कम्पनियां। हिसाब हर छः माह में होता था। ये लाइनें सरकार की निगरानी में बनवायी होती थीं और सरकार को कुछ समय बाद उन लाइनों को खरीदने का अधिकार होता था। इस ढंग से काम होने में ख़र्च बहुत अधिक हुआ। कम्पनियों ने किफ़ायत की ओर ध्यान नहीं दिया और मनचाहा रुपया ख़र्च कर डाला। इसलिये पीछे इस ढंग में सुधार किया गया। सरकार अपनी लाइनें भी बनाने लगी।

भारतवर्ष में अब अड़तीस हज़ार मील से अधिक में रेलवे लाइन फैली हुई है। बहुत सी रेलवे लाइनों की मालिक सरकार है। कुछ देशी राजाओं की हैं तथा थोड़ी सी लाइन ज़िला बोर्डों को उत्साहित करके बनवायी गयी हैं। रेलवे लाइनों की चौड़ाई भिन्न भिन्न स्थानों में अलग अलग है। छोटी लाइनें दो ढाई फ़ीट की और बड़ी लाइनें ५ से ५½ फ़ीट तक की हैं।

रेलों का प्रबन्ध—भारतवर्ष में अधिकतर रेलवे लाइनों का प्रबन्ध सरकार के हाथ में है। कम्पनियों की रेलों पर भी सरकारी देख रेख रहती है। सब रेलों पर देख रेख का काम एक रेलवे बोर्ड करता है, इसमें एक सभापति और दो अन्य सदस्य होते हैं।

जिन रेलों का प्रबन्ध कम्पनियाँ करती हैं, उनका 'बोर्ड-आफ़ डायरेक्टर' लंदन (इंगलैंड) में है। इस बोर्ड की ओर से भारत

वर्ष में एक 'एजन्ट' रहता है। इस एजन्ट के नीचे ट्रैफिक मैनेजर, चीफ इंजीनियर और स्टेशन मास्टर आदि कर्मचारी होते हैं। सरकारी रेलों में भी ऐसे ही कर्मचारी काम करते हैं।

अभ्यास

१—रेलों का प्रबन्ध कौन करता है ?

२—रेलों से जो लाभ तुम्हें होते हों उनके नाम लिखो।

३—बड़ी लाइन और छोटी लाइन के पटरियों की चौड़ाई कितनी होती है ?

४—शब्दार्थ लिखो—

सहयोग, सहानुभूति, किफ़ायत, सदस्य, सम्मति, कर्मचारी।

२७—बम्बई का समुद्र-तट

(सायङ्कालिक दृश्य)

सायङ्काल हवा समुद्र तट की नैरोग्यकारी महा,
प्रायः शिक्षित सभ्य लोग नित ही आते इसी से वहाँ।
बैठे हास्य-विनोद मोद करते सानन्द वे दो घड़ी,
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्ति देती बड़ी॥ १॥
सन्ध्या को गिरतीं दिनेश-कर की नोकें ललाई सनीं,
होती है तब दिव्य वारिनिधि की शोभा मनोमोहिनी।
नीचे से जब बार बार उठती ऊँची तरङ्गावली,
आती है बढ़के सु-दूर फिर भी जाती वहाँ ही चली॥ २॥

छोटे और बड़े जहाज़ जल में देखो वहाँ वे खड़े,
सो भी दृश्य विचित्र किन्तु हमको वे हानिकारी बड़े।
ले जाते वर-वस्तु देश भर की जानें कहाँ की कहाँ,
लाते केवल ऊपरी चटक की चीज़ें विदेशी यहाँ॥ ३॥
है उद्यान महा-मनोहर जहाँ विख्यात वृक्षावली,
फूली है कुसुमावली नव-नवा सौरभ्य आती चली।
बैठी स्वागत सी जहाँ कर रही प्यारी विहङ्गावली,
चित्ताकर्षक ख़ूब वारिनिधि की आनन्ददायी थली॥ ४॥
आते हैं दिन के थके जन सदा सन्ध्या हुए पै यहीं,
प्यारी मन्द सुगन्ध-शीतल हवा अन्यत्र पाते नहीं।
दे के स्पर्श समीर ख़ूब करती आतिथ्य सेवा तथा,
खोती है श्रम सर्व और उनकी सारी मिटाती व्यथा॥ ५॥
मेमें मञ्जुल पारसीक नवला-नारी दिखाती अदा,
आती हैं सब सभ्य भव्य महिला प्रायः सदा सर्वदा।
वे स्वाधीन सभी, समाज निज से स्वातन्त्र्य पाई हुई,
आतीं जो मरु-वासिनी वह कथा है सर्वथा ही नई॥ ६॥

सुभग-सदन-पंक्ति प्रान्त में हैं दिखाती,
घर घर सुखमा को वाटिका है बढ़ाती।
विकसित कुसुमावली ख़ूब सर्वत्र छाई,
सुरुचिर हरियाली मालियों की लगाई॥ ७॥
मदबस-मतवाली जो वहाँ कामिनी हैं,
अनुपम-छवि वाली रूप-शाली बड़ी हैं।
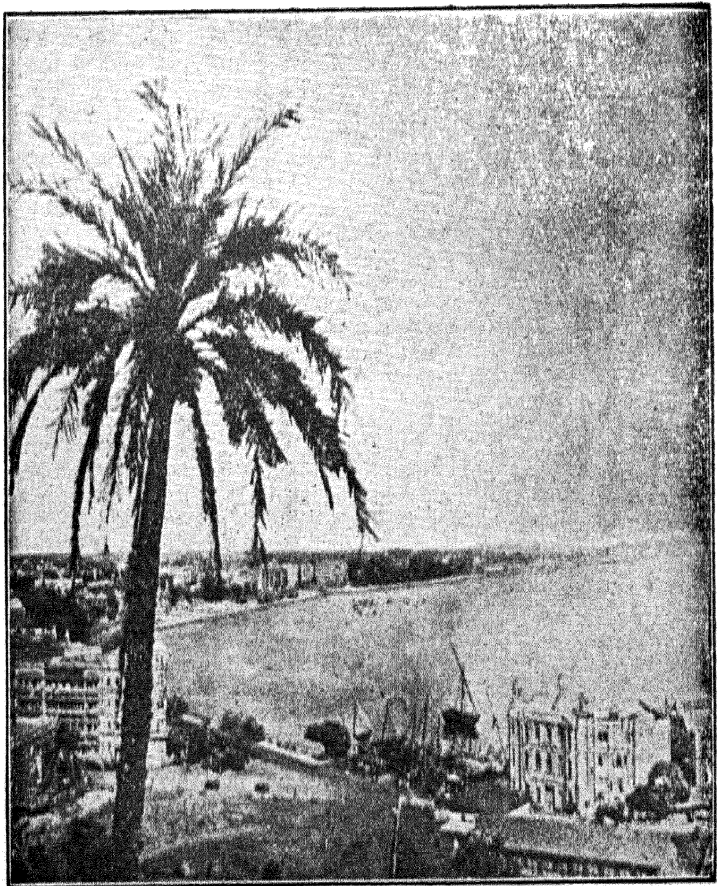
बम्बई का समुद्र-तट

दृग-पथ करने से चित्त आता यही है,
सुर-पुर-बनिता ही क्या यहाँ आ गई हैं ॥८॥
शोभा समुद्र तट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय।
यथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय,
है दृश्य केवल अहो! वह दर्शनीय ॥९॥

—कन्हैया लाल पोद्दार

अभ्यास

१—बम्बई के समुद्र-तट का वर्णन करो।

२—बम्बई से जहाज कहाँ को जाते हैं?

३—इनके अर्थ लिखो—

नैरोग्यकारी, तरङ्गावली, उद्यान, कुसुमावली, सौरभ्य, चित्ताकर्षक, अन्यत्र, नवला, मंजुल, स्वातन्त्र्य, सुर-पुर-बनिता, मदीय, तदीय, मदबल, सुभग-सदन-पंक्ति।

४—इन समासों के नाम लिखो—

सुभग-सदन-पंक्ति, सुर-पुर-बनिता, मरु-वासिनी, नवला-नारी, दिनेश-कर, वर-वस्तु, महा-मनोहर।

२८—सच्चरित्रता

यदि इस संसार में मनुष्य को आदर्श पुरुष बनाने वाला कोई सर्वोत्तम गुण है तो वह सच्चरित्रता है। मनुष्यों की मानसिक सद्वृत्तियों को सर्वाङ्गीण समुन्नत और उत्कृष्ट बनाना तथा

कर्त्तव्यनिष्ठ होकर महाजनानुमोदित और विवेक प्रदर्शित पथ से अपना शान्त और सरल जीवन बिताना ही सच्चरित्रता है। तन, मन, वचन और कर्म से दूसरे का अनिष्ट न करने, सब के साथ सहानुभूति तथा अनुग्रह रखने और उपयुक्त पात्र में दान देने ही को शास्त्रकारों ने सच्चरित्रता कहा है।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा सच्चरित्र बनने की चेष्टा करें। छात्रों को तो सर्वोपरि इसका अभ्यास करना उचित है क्योंकि उनके जीवन का प्रातःकाल छात्रावस्था ही है। सच्चरित्र बनने की चेष्टा करने वालों को आन्तरिक संकल्प में दृढ़प्रतिज्ञ होकर समयोचित आत्मसंयम और कठोर आत्म-शासन करना श्रेयस्कर है। अपने को अपने ही में वशीभूत रखना आत्म-शासन और अपने को सब प्रकार की उच्छृङ्खलता से रोकना आत्मसंयम है। यदि ऐसा बनकर अपने भाव और कार्य्य को सत्पथ में प्रवृत्त करे तो मनुष्य निस्सन्देह सच्चरित्र हो सकता है। सच्चरित्र व्यक्तियों के सदनुष्ठान सदाचार और सदुदाहरण सदा समक्ष रखकर तदनुरूप जीवनयापन की प्रबल आकांक्षा, तथा उत्तम उत्तम ग्रन्थों और जीवनचरित्रों का अध्ययन चरित्र-शिक्षा के प्रबल सहायक हैं। सत्यानुराग, परोपकारेच्छा, आज्ञानुवर्तिता और सांसारिक सुखदुःख में अविचलचित्तता होने से ही सच्चरित्रता की दृढ़ता हो सकती है।

जो मनुष्य अपने दोष-दर्शन में समर्थ नहीं है जो दोषों को दूर करने में शिथिलता करता है, जो पाप की आपातमधुरता में

प्रलुब्ध होकर प्रवृत्त होता है, जो कुत्सित ग्रन्थों की कुचरित्रमय कथाएँ और कल्पनाएँ पढ़कर मन में कुविचार पैदा करता है, जो कुसंग में पड़कर अपने को कलुषित करने का सूत्रपात करता है, वह कभी सच्चरित्र नहीं हो सकता। सदाचार शिक्षार्थी न ऐसे काम करें और न ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियों का संसर्ग ही करें, क्योंकि दुराचारी का पापमय और दुःखमय परिणाम और अधःपात होता है वह सब को विदित ही है। जो मनुष्य सच्चरित्र है उसके हृदय में सत्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, संयमशक्ति प्रभृति सारी गुणावलियाँ लहरें मारती हैं। दया, स्नेह, क्षमा, विनय, भक्ति, प्रीति आदि कोमल वृत्तियाँ संचालित होती रहती हैं, श्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, प्रतिभा आदि शक्तियाँ विकसित होती हैं। सच्चरित्र व्यक्ति क्रोध, द्वेष, अविनय, अहंकार, प्रलोभन आदि दुर्वृत्तियों को दूर करता है। न्यायविमुखता, उच्छृंखलता, असत्यता आदि दुर्गुणों को पास फटकने नहीं देता। चरित्रवान् व्यक्ति माता पिता परिजन तथा गुरुजनों को सदा सन्तुष्ट करने की चेष्टा किया करता है। स्वजाति और स्वदेश के कल्याणार्थ आत्मत्याग करता है और विवेक-परायणता तथा कर्त्तव्य-पालन में उत्साह दिखलाता है। सच्चरित्र मृत्युलोकनिवासी होने पर भी अमर, अकिंचन होने पर भी सम्राट् और शास्त्रज्ञान-विहीन होने पर भी ज्ञानी है। यही क्यों, सच्चरित्र व्यक्ति जन साधारण के लिये आदर्श पुरुष है।

विद्या बुद्धि और चरित्र से कोई अटूट और अनिवार्य्य सम्बन्ध नहीं है। विविध विद्याओं की अभिज्ञता और चरित्र की पवित्रता भिन्न भिन्न बात है। मूर्ख भी सुचरित्र हो सकता है और विद्वान् भी दुराचारी। इसके दृष्टान्तों की कमी नहीं। पर विद्या के साथ सच्चरित्रता का संयोग वांछनीय है। सच्चरित्र निरक्षर की अपेक्षा दुश्चरित्र साक्षर निकृष्ट है। यदि दुराचारी विद्या-बुद्धि-सम्पन्न धनाढ्य भी हो तो मणिभूषित सर्प के समान त्याज्य है। समझना चाहिये कि दुराचारी का विद्याभ्यास और अर्थोपार्जन समाज का बड़ा अनिष्टकर है। अकिंचन चरित्रवान् व्यक्ति चरित्र-हीन करोड़पति की अपेक्षा महान् और सुखी है।

जिन कारणों से मनुष्य प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है और जिन गुणों के कारण मनुष्य अपने नाम को सार्थक करता है उन सब का एकाधार सच्चरित्रता है। सुचरित्र-बल ही प्रधान बल है। निष्कलंक चरित्र ही अमूल्य सम्पत्ति है। सारी उन्नतियों का मूल सच्चरित्रता है। महत्व और गौरव का परिचायक सच्चरित्रता ही है। सच्चरित्रता होना ही मानवजीवन का प्रधान लक्ष्य और श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इससे सब को सुचरित्र बनने की सदा चेष्टा करनी चाहिये।

—बाल कृष्ण भट्ट

अभ्यास

१—सच्चरित्रता किसे कहते हैं ?

२—आत्मसंयम क्या है ?

३—सच्चरित्र मनुष्य को किन किन बातों मे बचना चाहिये ?

४—सचरित्रता पर एक लेख १० पंक्तियों का लिखो ।

२६—सूरदास के पद

(१)

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी ।

किती बार मोहि दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत नहावत ओंछत नागिन सी भ्वैं लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
"सूर" श्याम चिरजीवो दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

(२)

खेलन अब मेरी जात बलैया ।

जबहिं मोहिं देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया ॥
मोसों कहत पूत बसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बढ़ैया ॥
अब बाबा कहि कहत नंद को यशुमति को कहै मैया ।
ऐसहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
"सूर" नंद बलराम हि धिरयो सुनि मन हरष कन्हैया ॥

(३)

जेंवत श्याम नंद की कनियाँ

कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नँद रनियाँ ॥
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन विविध अनगनियाँ ।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियाँ ॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित कर मुख नावत छवि धनियाँ ।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ ॥
जो रस नन्द यशोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ ।
भोजन करि नन्द अंचवन कीन्हों माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

(४)

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चंद्र खिलौना लैहौं ॥
धौरी का पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं ।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झँगुली कंठ न लैहौं ॥
जैहौं लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं ।
लाल कहैहौं नन्द बबा को तेरा सुत न कहैहौं ॥
कान लाय कछु कहत यशोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं ।
चंदहू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं ॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं व्याहन जैहौं ।
"सूरदास" सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं ॥

(५)

मैया मैं न चरैहौं गाइ

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाइँ पिराइ ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ ॥

मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवे मन बहराइ।
"सूर" श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

अभ्यास

१—अर्थ लिखो—

व्यंजन, बिलमत, भुवनियाँ, धौरी, नवल और पत्याहि।

२—वसुदेव व देवकी के विषय में क्या जानते हो?

३—कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करो।

३०—सर भाण्डारकर

संसार के मनुष्यों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, एक साधारण, दूसरे असाधारण। साधारण लोगों की ओर हमारा ध्यान कभी आकृष्ट नहीं होता। ये रोज़ ही जन्म लेते और मरते रहते हैं; किन्तु असाधारण लोगों का ढँग ही दूसरा होता है। उनके जन्म लेने से देश में एक हलचल मच जाती है और उनके मरने से जो स्थान रिक्त होता है उसकी किसी प्रकार पूर्ति नहीं हो सकती। उनमें एक ऐसी विशेष महत्ता होती है जो सर्वथा उन्हीं की होती है। वे मनुष्य-जीवन के लिये एक आदर्श स्थापित करते हैं। सैकड़ों मनुष्य को उस आदर्श से नूतन स्फूर्ति मिलती है। जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ पर अग्रसर होते हैं और जनता उनके बनाये हुए मार्ग पर चलने लगती है बस यही साधारण और असाधारण मनुष्यों में सब से बड़ा भेद है। एक नेता होता है, दूसरा अनुचर। यही कारण है कि वे देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं। उनकी प्रतिष्ठा किसी देश-विशेष में

सङ्कुचित नहीं रहती। संसार एक स्वर से उनका आदर करता है। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति कहलाते हैं। इतिहास उनको 'महान्' की उपाधि से विभूषित करता है। कई युग-युगान्तर हो जाते हैं, सैकड़ों क्रान्तियाँ हो जाती हैं। पर तो भी इतिहास के स्वर्ण-पृष्ठों पर सदैव अक्षय बना रहता है वास्तव में हमारे सर भाण्डारकर ऐसे ही असाधारण पुरुषों में से थे।

वैसे तो असाधारण व्यक्तियों के विचार प्रायः सभी विषयों पर प्रौढ़ और गम्भीर होते हैं। परन्तु उनका एक विशेष क्षेत्र होता है। उसी में वे सबसे अधिक उन्नति करते हैं। सर भाण्डारकर का यह विशेष क्षेत्र था शिक्षा। इन्होंने धार्म्मिक और सामाजिक सुधार में भी बहुत काम किया है। वे बम्बई-प्रान्त की प्रार्थना-समाज के सबसे बड़े नेता थे। मराठी-भाषा में इन्होंने जो भजन और धार्मिक लेख लिखे हैं उनके द्वारा आज भी सैकड़ों लोगों में धार्मिक भाव और धार्मिक स्फूर्ति जाग्रत हो रही है। ये धार्मिक सुधार के कट्टर पक्षपाती थे। यहाँ तक कि कभी कभी इनका धर्म-सुधार-भाव कटुता तक पहुँच जाता था ; परन्तु यह कोई विलक्षण बात नहीं। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की आज जो अवस्था है उसे देख कर सभी लोगों को आवेश आ सकता है किन्तु धार्मिक और सामाजिक सुधार के विषय में इनकी नीति जितनी उग्र थी, राजनैतिक विषयों में ये उतने ही नरम थे। अधिकतर ये सरकारी नीति का ही समर्थन करते थे तो भी आज से कोई ५० वर्ष पहले जब दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतवासियों की

अधिकार-हानि और अत्याचार की खबर भारतवर्ष में आई थी तब ये भी अपने एकान्त-सेवन से निकल पड़े थे। उस समय इन्होंने पूना की विशाल प्रतिवाद सभा का सभापतित्व ग्रहण किया था।

पर असल बात तो यह है कि ये सब बातें इनके लिए गौण थीं। ये एक-मात्र सर्वश्रेष्ठ शिक्षक थे। इनका सारा जीवन पढ़ने और पढ़ाने ही में बीता, इनका सबसे अधिक ध्यान इसी ओर था। यों तो आज भी देश में एक से एक दिग्गज विद्वान् और संस्कृतज्ञ पण्डित मौजूद हैं; किन्तु संस्कृतज्ञ और पुरातत्ववेत्ता होने के कारण देश और विदेशों में जितनी ख्याति इन्होंने प्राप्त की है, उतनी और किसी ने नहीं। प्राचीन शैली से संस्कृत पढ़ने के अतिरिक्त इन्होंने विवेचनात्मक और तुलनात्मक पद्धति की भी शिक्षा प्राप्त की थी। पूर्वीय पद्धति की गम्भीरता और व्यापकता के साथ साथ इन्होंने पश्चिमी पद्धति के द्वारा छोटी छोटी बातों के अन्वेषण करने की भी यथेष्ट क्षमता प्राप्त की थी। यही कारण है कि ये वेबर सरीखे प्राच्य-विद् विद्वानों से टक्कर ले सके। इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत-पाठ्य पुस्तकों की जो एक ग्रन्थमाला तैयार की है उससे विद्यार्थियों का बड़ा उपकार हुआ है। आज-कल हज़ारों विद्यार्थी उन्हीं पुस्तकों के द्वारा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

डाक्टर भाण्डारकर का जन्म ६ जुलाई सन् १८३७ को एक महाराष्ट्र-ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके माता पिता ग़रीब थे।

पहले इन्हें रत्नगिरि के स्कूल में शिक्षा मिली और फिर बम्बई के एल्फ़िन्सटन कालेज में भरती हुए। यहाँ इनको दादा भाई नौरोजी का शिष्यत्व ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दादा भाई ने उसी समय इनकी बाल-प्रतिभा को ताड़ कर इनके उज्ज्वल भविष्य की घोषणा कर दी थी। कालेज से निकलते ही ये दक्षिण-कालेज के फ़ेलो बना दिये गये। यहाँ इनकी मिस्टर हावर्ड से भेंट हुई, इन्हीं के प्रोत्साहन से ये संस्कृत के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए।

सन् १८६३ में भाण्डारकर ने क़ानून पढ़ने का विचार किया; किन्तु इसी समय इनको हैदराबाद के एक स्कूल की हेडमास्टरी की जगह मिल गई। इन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। थोड़े ही दिनों बाद ये रत्नगिरि के अपने ही हाई स्कूल के हेडमास्टर हो गये। इनके सुयोग्य प्रबन्ध, सहृदय व्यवहार एवं प्रवीण शिक्षाप्रणाली के कारण थोड़े ही दिनों में रत्नगिरि का स्कूल चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। ये अपने स्कूल के नवयुवक विद्यार्थियों का जीवन एक नये साँचे में ढालने लगे। ये वास्तव में एक प्राचीन कालीन गुरु थे। विद्यार्थियों के विचार एवं चरित्र पर मौखिक उपदेशों के द्वारा वह प्रभाव नहीं पड़ सकता जो स्वयं आदर्श चरित्र से पड़ता है। इनकी छत्र-छाया में बालक अपने आप सुधरने लगे। थोड़े ही दिन में इनकी हेडमास्टरी की ख्याति दूर दूर फैल गई।

इसके बाद सन् १८६८ में ये अपने एल्फ़िसटन कालेज में अस्थायीरूप से संस्कृत के प्रोफ़ेसर नियुक्त किये गये। यहाँ भी इनके नवीन ढँग एवं विशद व्याख्या के कारण कालेज की संस्कृत कक्षायें ठसाठस भरने लगीं। सन् १८७२ में कालेज की संस्कृत प्रोफ़ेसरी स्थायीरूप से खाली हो गई। उस समय भाण्डारकर की जैसी प्रशंसा हो रही थी, उससे लोगों को यही आशा थी कि इनके सिवा और कोई इस पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु चाहे अधिकारियों का पक्षपात हो और चाहे भाग्य का फेर, उस समय भाण्डारकर को यह प्रोफ़ेसरी न मिल सकी। एक दूसरे सज्जन डाक्टर पीटर्सन बाहर से बुला कर, जो इनसे कहीं छोटे थे, इस काम पर नियुक्त कर दिये गये। इससे भाण्डारकर को बड़ा धक्का लगा; परन्तु इन्होंने धैर्य के साथ उसे सहन कर लिया। ये बराबर ७ साल तक डाक्टर पीटर्सन के नीचे काम करते रहे। वास्तव में विघ्न-बाधायें किसी होनहार व्यक्ति को धैर्यच्युत नहीं कर सकतीं। सफलता उनकी चेरी होती है।

सन् १८७९ में पूना के डेक्कन कालेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर बिलहान छुट्टी पर गये और उनके स्थान पर भाण्डारकर काम करने के लिए बुलाये गये। सन् १८८५ के अन्त में वह स्थान स्थायीरूप से खाली हो गया। अब फिर प्रश्न उठा कि इस स्थान पर किसकी नियुक्त हो। एक जर्मन-प्रोफ़ेसर बाहर से इस कार्य के लिए बुलाया ही जाने वाला था कि लोगों ने जोर के

साथ सरकार से इस पक्षपात का प्रतिवाद किया। तब कहीं बड़ी कठिनाई के बाद ये उस स्थान में नियुक्त हो सके। विद्यार्थियों में इनकी लोक-प्रियता बढ़ती ही गई। सन् १८६३ में ये गवर्नमेण्ट सर्विस से अलग हो गये।

विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर और परीक्षक रहने के अतिरिक्त ये १८७३ से १८८२ तक उसकी सिंडीकेट समिति के सभासद् भी रहे और उस समय उसके सञ्चालन में इनका बड़ा हाथ भी रहा। नौकरी छोड़ने के बाद ये विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर नियुक्त किये गये। इस प्रकार मानो विश्वविद्यालय ने इनकी विद्वत्ता और सेवाओं का यथोचित सम्मान कर दिया।

यह तो हुआ इनकी जीवनचर्या का संक्षिप्त उल्लेख। किन्तु इस प्रकार इनके साहित्यिक कार्यों का वर्णन कर देना बड़ा कठिन है। इनका साहित्यिक जीवन इण्डियन एण्टीक्वेरी के जन्म के साथ प्रारम्भ होता है। यह पत्र जेम्सबर्जेस ने पूर्वीय विद्वानों के अन्वेषणों के प्रकाशित करने के लिए सन् १८७२ से निकालना प्रारम्भ किया था। डाक्टर भाण्डारकर रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई-शाखा के भी बहुत दिनों तक सदस्य रहे। इस संस्था का प्रादुर्भाव सन् १८०४ में हुआ था। भाण्डारकर के पहले केवल दो ही हिन्दुस्तानी उसके सदस्य हो सके थे, एक मानक जी पारसी और दूसरे भाऊदाजी। किन्तु भाण्डारकर की विद्वत्ता ने बहुत जल्दी उसके द्वार खुलवा लिए। इन्होंने उस समय उक्त सोसाइटी के जनरल और इण्डियन एण्टीक्वेरी में

इतने अधिक और एक से एक बढ़कर गवेषणापूर्ण लेख लिखे कि सर्वत्र इनकी विद्वता की धाक जम गई। सन् १८७२, ७३ और ७४ में इनका बर्लिन के प्रोफ़ेसर वेबर के साथ पतञ्जलि के काल-निर्णय के विषय में वादविवाद छिड़ गया। अन्त में इन्होंने सिद्ध कर दिया कि पतञ्जलि ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व हुए थे। आज कल यही काल-निर्णय सर्वग्राह्य हो गया है। वास्तव में भाण्डारकर की वह गवेषणा बहुत ही महत्तापूर्ण है, क्योंकि इसके पहले ईसा के पूर्वकालीन संस्कृत साहित्य की तिथियों का कोई ठीक ठीक पता ही नहीं चलता था। यही नहीं, भाण्डारकर ने और भी योरपीय विद्वानों के कई कपोलकल्पित मतों को छिन्न भिन्न किया है। एलिस महोदय की राय थी कि महाभारत की रचना ईसा की सोलहवीं शताब्दी में हुई है। इस समय यद्यपि इस सम्मति पर विचार करना भी हँसी सी मालूम होती है; तथापि उस समय ऐसी बहुत सी असङ्गत बातों का प्रचार हो रहा था। सन् १८६४ में डबलिन के एक प्रोफ़ेसर ने तो यहाँ तक कह डाला था कि संस्कृत कुछ थोड़े से कूटनीतिज्ञ और चतुर ब्राह्मणों की मन-गढ़न्त भाषा है और संस्कृत का सारा साहित्य लोगों को धोखा देने के लिये इन्हीं ब्राह्मणों ने बना डाला है। भला, इस खोज की भी कोई हद है। परन्तु भाण्डारकर ने एक लेख लिख कर इनके सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ा दीं और फिर उस दिन से किसी ने उसका प्रतिपादन करने का साहस नहीं किया। सन् १८७४ में भाण्डारकर ने वेदों के ऊपर भी एक महत्वपूर्ण

लेख लिखा था। इसी वर्ष इनको लन्दन में होने वाली पूर्व के इतिहास से प्रेम करने वाले सज्जनों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की ओर से निमन्त्रण मिला; किन्तु ये कुछ घरेलू मामलों के कारण उसमें सम्मिलित न हो सके। पर इन्होंने नासिक की प्रशस्तियों के ऊपर एक लेख लिख कर वहाँ भेजा, उसमें बहुत सी नई नई ऐतिहासिक बातें बताई गई थीं। इस लेख का वहाँ बड़ा आदर हुआ, और भाण्डारकर की ख्याति कई गुना अधिक बढ़ गई। दूसरे ही वर्ष ये रायल एशियाटिक सोसाइटी के सम्मानित सदस्य बना लिये गये। थोड़े दिन बाद विलसन की स्मृति में भाषा-विज्ञान की कक्षा खोली गई और सन् १८७६ में ये उसके प्रथम व्याख्यानदाता नियुक्त हुए। यहाँ भारतीय भाषा-विज्ञान के विषय पर इन्होंने जो व्याख्यान दिये वे साहित्य की स्थायी चीज़ हैं। सन् १९१४ में वे पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए हैं। सन् १८७९ में बम्बई सरकार ने इनको संस्कृत की पाण्डु लिपि के अनुसन्धान का काम सौंपा। यह समय समय पर अपने अन्वेषणों को पुस्तकाकार प्रकाशित किया करते थे। वास्तव में इनको विभिन्न विषयों पर ऐतिहासिक तथ्यों का एक अगाध ख़ज़ाना ही समझना चाहिए, जो भारत के प्राचीन इतिहास के प्रेमियों के लिये स्थायी महत्व के हैं। इसी बीच में इन्होंने जैन धर्म के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संशोधन और सम्पादन कर डाला, इतना ही नहीं, स्वयं प्राचीन जैन भद्रों का अवलोकन किया। इससे, इन्होंने जैन धर्म के इतिहास में एक नूतन जीवन डाल दिया, क्योंकि इनके

पहले इसका इतिहास एक दम कोरा था। पाण्डुलिपियों के अन्वेषण में इन्होंने वैष्णव और शैव धर्म के विषय में भी बहुत सी नई बातें ज्ञात कीं, जो सन् १९१३ में 'वैष्णव, शैव आदि मतों के सिद्धान्त' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। यही उनका सब से बड़ा ग्रन्थ है। सन् १८८४ में इन्होंने अपना 'दक्षिण इतिहास' प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ भी ऐतिहासिक तथ्यों का कोष कहा जा सकता है; शायद अभी तक इससे बढ़कर दक्षिण का और कोई इतिहास नहीं निकला।

सन् १८८५ में जर्मनी के गेटिनजेन विश्वविद्यालय ने भाण्डारकर जी की विद्वत्ता का सत्कार करने के लिए इन्हें पी० एस० डी० की डिगरी से विभूषित किया। दूसरे साल ये पूर्व-तत्ववेत्ताओं की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में, जो वायना में हुई थी, सम्मिलित हुए। उसके लिए इन्होंने यज्ञ और पञ्चरात्रिविधान के ऊपर एक लेख लिखा था, जिसकी वहाँ बड़ी प्रशंसा हुई। इस सभा में सम्मिलित होने से भाण्डारकर को बड़े बड़े योरपीय विद्वानों से भेंट हुई। फिर क्या था, योरप और अमेरिका की पूर्वतत्वप्रेमी सभा सोसाइटियाँ भाण्डारकर का सम्मान करने के लिये मानों स्पर्धा करने लगीं। ये इटली के डी० एम० जी०, ए० डी० एस० और ए० एस० सभाओं के सम्मानित सदस्य चुने गये। यह देखकर सरकार से भी न रहा गया, उसने भी सन् १८८७ में इनको सी० आई० ई० की उपाधि दे डाली। दूसरे साल ये सेंट पीटर्सबर्ग के इम्पीरियल एकेडेमी आफ सायन्स के सदस्य

चुने गये। सारांश यह कि ये क्या देश में और क्या विदेश में सर्वत्र सर्वसम्मति से भारतवर्ष के सबसे बड़े संस्कृतज्ञ माने जाने लगे।

हमारी समझ में तो सर भाण्डारकर की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि इनका साहित्यिक प्रेम आजन्म ज्यों का त्यों बना रहा। नौकरी छोड़ने पर उसमें कोई ह्रास न हुआ। यहाँ तक कि वृद्धावस्था में भी, जब इनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, ये अदम्य उत्साह के साथ काम करते रहे। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ भी वृद्धावस्था में ही प्रकाशित हुआ है। वास्तव में यह है भी बड़े महत्व का जो तुलनात्मक दृष्टि से धर्मों का अध्ययन करते हैं उन्हें मालूम होगा कि हिन्दू धर्म और प्रारम्भिक ईसाई धर्म के बहुत से सिद्धान्तों में बड़ा सादृश्य पाया जाता है। भक्ति-वाद का सिद्धान्त इसका सबसे मोटा उदाहरण है; बहुत से ईसाई पादरियों का कहना भी यही है कि ईसाई धर्म के प्रभाव से ही हिन्दू धर्म में भक्तिवाद का प्रसार हुआ। सर भाण्डारकर ने अपने इस ग्रन्थ में अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे भारतीय साहित्य में भक्तिवाद का उल्लेख ईसा से कम से कम ६ शताब्दी पहले से होता चला आ रहा है। पाणिनी के समय में वासुदेव की पूजा होती थी और भागवत धर्म का खूब प्रचार था, यह बात पाणिनी के सूत्रों से ही स्पष्ट है। इसलिए यह कहना कि ईसाई धर्म के प्रभाव से हिन्दू धर्म में भक्तिवाद का चलन हुआ, सर्वथा मिथ्या है। इस प्रकार सर भाण्डारकर ने वास्तव में

इतिहास की ही नहीं, हिन्दू धर्म की भी बड़ी भारी सेवा की है ?

सन् १९१५ के मध्य में इनके शिष्यों और श्रद्धालुओं के हृदय में यह विचार उठा कि सर भाण्डारकर की स्मृति को चिरस्थाई करने के लिये एक भारतीय संस्था की आवश्यकता है और उसमें वही प्राचीन शोध सम्बन्धी कार्य होना चाहिये जो इनको इतना अधिक प्यारा है। सर रतन और सर दोराब ताता सच-मुच हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, जिनकी सहायता से यह विचार शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत हो गया। जुलाई सन् १९१७ में लार्ड विलिंगडन के हाथों से भाण्डारकर संस्था की विधिवत् स्थापना हो गई। यह हर्ष का विषय है। तब से बहुत से उत्साही विद्यार्थी इनके बनाये हुए मार्ग के अनुसार शोध सम्बन्धी कार्य में लगे हुए हैं। वास्तव में इन्होंने अपने जीवन काल में ही लोगों में इस विषय की ओर इतना प्रेम और उत्साह जाग्रत कर दिया था कि आशा है, उनका कार्य सदैव सुचारुरूप से चलता रहेगा।

इधर कुछ दिनों से सर भाण्डारकर ने सब काम काज छोड़ दिया था। उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ रहा था। ८८ वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हो गया।

—समीक्षक

अभ्यास

१—मनुष्य किन दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं, असाधारण मनुष्य कौन कहलाते हैं ?

२—सर भाण्डारकर का संक्षिप्त परिचय दो।

३—सर भाण्डारकर का विशेष क्षेत्र क्या था और उनकी विशेषता क्या थी ?

३१—मातृ-भूमि

(१)

हे मातृ-भूमि ! सब सुखागार।
तुमको प्रणाम है बार बार॥
सौन्दर्य-छटा तेरी विलोक।
हो जाता हूँ मैं विगतशोक॥

(२)

जल प्रचुर, देवि ! धन-धान्य-पूर्ण।
लख तुझे होय रिपु-हिय विचूर्ण॥
प्राकृतिक दृश्य तेरे निहार।
देता नन्दन सर्वस्व हार॥

(३)

सिर अहा ! हिमालय सा विशाल।
तेरा शोभित कर रहा भला॥

बस ध्यान मात्र करके त्वदीय ।
होता है पुलकित मन मदीय ॥

(४)

सुर सरिता कर जल को जुहार ।
तव हिय का है हो रही हार ॥
अति कुसुमित जिसका रम्य तीर ।
चलती है नित सुरभित समीर ॥

(५)

हैं जहाँ लता तरुवर अनेक ।
है जहाँ नित्य बँटता विवेक ॥
अध्यात्म विषयरत योगनिष्ठ ।
हैं योगीजन रहते सुशिष्ट ॥

(६)

यह विविध द्विजों का मिष्ट बोल ।
करते कलकल जो कर कलोल ॥
मानों तव अर्चन हेतु आज ।
है प्रकृतिदेवि ! रच रही साज ॥

(७)

काश्मीर और पाञ्चाल देश ।
बंगाल युक्त मध्य प्रदेश ॥
महाराष्ट्र सिंध, गुजरात प्रान्त ।
मरुभूमि और मदरास प्रान्त ॥

(८)

यह सब तेरे अन्तर्गत हैं।
और विविध गुणालंकृत हैं॥
नव अन्तर्गत सब ये महान।
गुण गण भूषनयुत भासमान॥
हैं अपने ढंग के सब विचित्र।
इन में रहते नर सच्चरित्र॥

(९)

थे रहे राम औ कृष्ण, भीम।
जिनकी थी बलवत्ता असीम॥
था यहीं उन्हीं का राज्य छत्र।
होते थे यहां अनेक सत्र॥

(१०)

वे भोज और विक्रमादित्य।
जिनके ये अद्भुत सभी कृत्य॥
वे जयमल्ल पृथ्वीराज वीर।
जो थे अविचल औ समर-धीर॥

(११)

वे राजसिंह राणा प्रताप।
रण में रुकता जिनका न चाप॥
ये तेरे सुत सब थे समान।
था भरा जिन्हों में स्वाभिमान॥

(१२)

पहले नव मेधावो बलिष्ठ।
थे अगणित सुत कर्तव्य-निष्ठ॥
अब देश भक्ति का है अभाव।
यह हुआ अविद्या का प्रभाव॥

(१३)

मनु, बुद्ध, पतञ्जलि वेदव्यास।
था यहाँ सबों का प्रिय निवास॥
जिनका धरने से तनिक ध्यान।
हो जाता है उर शांति महान॥

(१४)

हे मातृ-भूमि! तव अन्न-भुक्त।
हैं तेरे ऋण से सभी युक्त॥
हम तेरी सेवा करें नित्य।
तब समझें निज को कृत-स्वकृत्य॥

—बदरीनाथ भट्ट

अभ्यास

१—मातृभूमि की प्राकृतिक शोभा का कुछ वर्णन करो।
२—जिन महापुरुषों के नाम इस पाठ में आये हों उनमें से किसी चार के विषय में वर्णन करो।
३—मातृभूमि के सब लोग ऋणी क्यों हैं?
४—रम्य, सुरभित, निष्ठ, कलोल और अन्तर्गत का अर्थ लिखो।

३२—रसायन क्या है ?

लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना, गन्धक, कागज़, दावात, लकड़ी, काँच, जल, चूना, कोयला, शोरा, नमक इत्यादि सैकड़ों वस्तुएँ हम लोग प्रतिदिन देखते और उनका प्रयोग करते हैं। ये वस्तुएँ क्या हैं ? हवा, पानी या आग से इनमें क्या परिवर्त्तन होता है ? भिन्न-भिन्न वस्तुओं को एक दूसरी के संसर्ग में लाने से कोई हेर-फेर होता है या नहीं यदि कोई हेर-फेर होता है, तो क्या होता है ? कभी एक पदार्थ से एक अधिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, और कभी अधिक पदार्थों से एक पदार्थ, इनमें वस्तुतः क्या क्रिया होती है ? इन सब बातों का अध्ययन और अन्वेषण विज्ञान (साइंस) के रसायन-विभाग के अन्तर्गत होता है।

'रसायन' वस्तुतः आधुनिक विज्ञान है, यद्यपि रासायनिक द्रव्यों और रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन प्राचीन काल से होता चला आता है। सब से पहले मिस्र और भारत में रासायनिक क्रियाओं और द्रव्यों का ज्ञान लोगों को था। आरम्भ में यह अध्ययन केवल दो उद्देश्यों से होते थे। कुछ लोगों का यह धारणा थी कि लोहा या पारा सदृश हीन धातु सोने में परिणत हो सकती है। लोग ऐसा समझते थे कि 'पारस-मणि' की सहायता से यह कार्य हो सकता है—'पारस परसि कुधातु सुहाई'। इस पारस-मणि की खोज में कितने मनुष्य लगे और मर मिटे—इसका ज्ञान किसी को नहीं है। धीरे-धीरे इस निरर्थक खोज की ओर से लोगों का मन हटा, और ऐसी क्रिया के

आविष्कार में लगे, जो लोहे या पारे को सोना बना दे। ऐसा समझा जाता है कि मिस्र वालों को ऐसी क्रिया मालूम थी जिसके द्वारा वे लोहे या अन्य हीन धातुओं को सोने के समान धातुओं में परिणत कर सकते थे। वस्तुतः ऐसी ही खोज से आधुनिक रसायन की नींव पड़ी और अनेक रसायनिक क्रियाओं का आविष्कार हुआ, जिनके लिये सारा संसार इन प्राचीन पुरुषों का ऋणी है। अँगरेज़ी का 'केमिस्ट्री' शब्द यूनानी 'कीमिया' से बना है। इस 'कीमिया' शब्द का अर्थ 'धातु का परिवर्त्तन' है। मिस्र वालों से अरब वालों ने इस धातु परिवर्त्तन कला का ज्ञान प्राप्त किया, और उनसे यह ज्ञान अन्य पाश्चात्य देशों में फैला।

दूसरी चेष्टा मनुष्यमात्र की ऐसी औषधि के आविष्कार की ओर झुकी, जिससे मनुष्य अमरत्व को प्राप्त हो, वा कम से कम बहुत समय तक जीवित रह सके और रोगों के कष्ट से वंचित रहे। इस प्रकार लोहा, सोना, पारा इत्यादि धातुओं के भस्मों का व्यवहार औषधियों में आरम्भ हुआ। लोगों ने देखा कि पारे में अनेक रोगों के दूर करने की शक्ति विद्यमान है। ऐसी औषधियों को वे 'रस' कहने लगे और इसी से 'रस' शब्द का आविर्भाव हुआ। ऐसी औषधियों की खोज में भी अनेक क्रियाओं और यंत्रों का आविष्कार हुआ, इस प्रकार बहुत प्राचीन काल में ही भारत में रसायन की नींव पड़ी। सोलहवीं शताब्दी तक 'रसायन' या तो सोना बनाने वा औषधि बनाने के लिये ही अध्ययन की सामग्री थी। इस समय तक वे ही लोग इसका अध्ययन करते

थे जो या तो चिकित्सक थे या जिन्हें सोना बना कर धनी होने की धुन सवार थी। सत्रहवीं शताब्दी से रसायन का अध्ययन केवल ज्ञानोपार्जन के विचार से आरम्भ हुआ। जब तुला का प्रयोग पहले-पहल विज्ञान के अध्ययन में आरम्भ हुआ और यह मालूम होने लगा कि पदार्थों से परिवर्त्तन में 'मात्रा' का परिवर्त्तन होता है या नहीं, तब वायु के एक मुख्य अवयव 'आक्सिजन' नामक गैस का आविष्कार हुआ, और तब से ही आधुनिक रसायन-विज्ञान की नींव पड़ी। 'आक्सिजन' का यह आविष्कार प्रायः १७७४ ई० में हुआ। आविष्कार का श्रेय एक फ्रांसीसी रसायनज्ञ मि० 'लेभीयोजियर' को प्राप्त है। यद्यपि अंगरेज़ रसायनज्ञ इनका श्रेय इंगलैंड के रसायनज्ञ 'प्रीस्टले' को देते हैं और जर्मनी तथा आसपास के रसायनज्ञ इसका श्रेय स्वीजरलैंड के रसायनज्ञ 'शील' को देते हैं। वस्तुतः 'लेभीयोजियर' महाशय ही आधुनिक रसायन के जन्मदाता कहे जाते हैं। इसी कारण अनेक समय तक रसायन 'फ्रांसीसी विज्ञान' के नाम से विख्यात था।

इस समय से अब रसायन का स्वतंत्र रूप से अध्ययन होने लगा और अनेक महत्वपूर्ण बातों का आविष्कार हुआ—अनेक सिद्धान्त और नियम प्रतिपादित हुए। आज-कल हजारों मनुष्य केवल ज्ञानोपार्जन के विचार से रसायन के अध्ययन में लगे हुए हैं। रसायन के अध्ययन से मनुष्यमात्र को कितना लाभ हुआ है, इसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं। मनुष्य को सभ्य बनाने वाली

जितनी बातें हैं, उनमें अधिकाँश इस विज्ञान के अध्ययन का ही फल है। नाना प्रकार की औषधियाँ, अनेक कृत्रिम रंगों, सुगंधित द्रव्यों, विस्फोटक पदार्थों, भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों इत्यादि का निर्माण कुछ ऐसे नमूने हैं, जिनसे इस विज्ञान की व्यापकता और महत्व का कुछ-कुछ पता लगता है।

ऐसे महत्वपूर्ण विज्ञान का अध्ययन सब के लिये आवश्यक है। कौन नहीं जानना चाहता कि हम जो भोजन करते हैं, उसमें क्या क्रिया होती है, हमें क्या खाना चाहिये—क्या नहीं ; पीतल के बरतन में दही खाना क्यों वर्जित है, दूध के साथ नमक क्यों वर्जित है, दूध से जमकर दही कैसे बनता है।

बालको ! यदि तुम इन सब प्रतिदिन की होने वाली घटनाओं और विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो, तो यह रसायन के अध्ययन से प्राप्त कर सकते हो।

अभ्यास

१—रसायन शास्त्र किसे कहते हैं ? उसके अध्ययन की नींव कैसे पड़ी ?

२—आधुनिक रसायन के जन्मदाता वास्तव में कौन हैं ? उनका संक्षिप्त परिचय दो।

३—रसायन शास्त्र का अध्ययन आवश्यक क्यों है ?

३३–दिल के फफोले

चौतुके

बनों में जिससे रही बहार,
बाग का जो था सुन्दर साज।
मसल क्यों उसको देते पाँव,
सजे जिससे हैं सर के ताज ॥ १ ॥
बनी जिससे अलबेली बेलि,
फबन जिससे पाते थे रूख।
धूल में उसको मिलता देख,
सकेगा कैसे आँसू सूख ॥ २ ॥
महक से जो लेता था मोह,
तर हुई जिसको देखे आँख।
न लेगा कौन कलेजा थाम,
देखकर उड़ती उसकी राख ॥ ३ ॥
चूमता था जिसको कर प्यार,
भाँवरें भर भर करके भौंर।
उठे उस पर क्यों उसका हाथ,
कहाता है जो जग सिर मौर ॥ ४ ॥
राह में देवें उन्हें न डाल,
न जी से देवें उन्हें उतार।

भरती थी जिनसे कितनी गोद,
बने जो किसी गले का हार ॥ ५ ॥
किया था जिसको जी से प्यार,
दिया क्यों उसे बला में डाल।
बना किसलिये काल का कौर,
रहा जो किसी कोख का लाल ॥ ६ ॥
दिया क्यों उसे धूल पर फेंक,
बने क्यों उससे वेपरवाह।
खिंचे थे जिसको रंगत देख,
कभी थी जिसकी चित में चाह ॥ ७ ॥
न उनकी पंखड़ियाँ लें नोच,
उन्हें दें गलियों में न बखेर।
नहीं जिनके छवि पाते भूल,
सके हम आँख न जिनसे फेर ॥ ८ ॥
कम न उनका कर देवें मोल,
किसलिये उन्हें करें पामाल।
मेलियों से करते हैं मेल,
गले में जिनका गजरा डाल ॥ ९ ॥
कलेजे जिससे खायें चोट,
किसी से हो क्यों ऐसी भूल।
किस लिये नुचे बने बदरंग,
हाथ में आया कोई फूल ॥ १० ॥
—पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अभ्यास

१—फूल से यहाँ कवि का क्या तात्पर्य है? अच्छी तरह समझाओ।

२—धूल में मिलना, आँखों का तर होना, जी से उतार देना का भावार्थ समझाओ और इनका प्रयोग अपने बनाये वाक्यों में करो।

३४—औरंगजेब का पत्र—आजमशाह के नाम

प्रिय पुत्र आजम!

न जाने क्यों, कुछ दिनों से चित्त में उच्चाट-सी लग रही है। तुम्हें मालूम है कि मैं किस मुस्तैदी से साम्राज्य का काम किया करता था, किस कठोरता से राजपुरुषों को काम में लगाये रहता था, और किस चाल से अपने शत्रुओं में भेद उत्पन्न किया करता था। किन्तु देखता हूँ; कुछ दिनों से वह सारी मुस्तैदी, सारी कठोरता, और सारी चाल मेरा साथ छोड़ रही है। राज्य को बढ़ाने की अभिलाषा, विधर्मियों को दंडित करने की धुन, और इस्लाम का प्रचार करने की लगन आदि—सारी बातें, न जानें क्यों, व्यर्थ प्रतीत हो रही हैं। विदित होता है, मैं किसी अनिश्चित उद्देश्य की ओर अब तक बराबर शीघ्रता से आगे ही बढ़ता गया हूँ। एक क्षण के लिये भी मैंने पीछे की ओर फिर कर नहीं देखा था। किन्तु अब मुझे भीतर से यह आवाज सुनाई पड़ रही है कि ठहरो औरंगजेब, जरा पीछे देखो, अब भी तो कुछ सोचो कि तुमने इतनी बड़ी जिन्दगी में क्या किया है!

औरंगज़ेब

प्यारे आजम, हो सकता है कि बहुत दिनों से तुम्हारा क्षेम-कुशल नहीं विदित हुआ है ; इसलिये चित्त घबड़ा रहा है। प्यारे 'बेदर'* का कुशल-समाचार जानने के लिये यह आकुलता बढ़ चली हो, अथवा किसी सम्बन्धी की अज्ञात बाधा से ही ऐसी उद्विग्नता उत्पन्न हुई हो। फिर भी, यह घबराहट इतनी बढ़ रही है कि कोई विशेष कारण तर्क में नहीं आता है। जहाँ तक अनुमान होता है, इसका यथार्थ कारण यह है कि अब मेरी वृद्धावस्था उस सीमा को पहुँच चुकी है, जहाँ से हरेक यात्री को परलोक का धुंधला दृश्य दिखाई देता है। किसी ने इस अवस्था के विषय में क्या ही ठीक कहा है कि—

यम-सेना-सी विमल ध्वजा अब जरा दृष्टि में आती है ;
लड़ती हुई पाप-रोगों से देह हारती जाती है॥

सचमुच अब मैं बराबर यही सोचा करता हूँ कि मुझे अब यहाँ बहुत कम दिन ठहरना है ; पका हुआ आम जिस प्रकार हलकी हवा के झोंके से गिर पड़ता है, उसी प्रकार न मालूम मैं किस दिन किस घड़ी किस क्षण गिर पड़ूँगा। अब मुझे परमात्मा के सामने एक-एक कर अपनी करतूतों का लेखा देना होगा। इतने बड़े साम्राज्य का एक छत्र सम्राट् होने पर भी—मुझे अकेला ही जाना होगा, अकेला ही हिसाब देना होगा। उस

* 'बेदर बख्त' आजमशाह का पुत्र और औरंगजेब का पौत्र था। औरंगजेब इसे बहुत प्यार करता था।—लेखक।

समय मेरा एक भी अनुचर या एक भी मुल्ला-मौलवी मेरा साथ नहीं देगा, और न किसी के कुछ कहने-करने से मेरा कोई अपराध ही कम हो सकता है, वह मेरा पाप दंड से बच सकता है। हाय ! मैं कितना असहाय हो रहा हूँ ! इन बातों की चिन्ता बराबर चित्त को व्यथित कर रही है। यही कारण है कि राज्य के कार्यों में कोई तत्व नहीं देख पड़ता। संसार ही सूना दीखता है। फिर राज-पाट, धन-दौलत आदि की चिन्ता हो तो कैसे ?

आजम ! मेरा परलोक बहुत ही अन्धकारपूर्ण और भयानक दीखता है। यद्यपि इस्लाम हमें यह शिक्षा देता है कि मरने के बाद सभी आत्मायें सोई-सी पड़ी रहती हैं और अन्त में कयामत के दिन एक बार सब जाग्रत हो उठेंगी—उसी समय सबको अपना-अपना हिसाब देना होगा, तथापि मुझे तो ऐसा ही विदित हो रहा है कि मैं मरा और कयामत आई। एक क्षण के लिये भी मुझे अपने हिसाब को ठीक करने का अवसर नहीं दिया जायगा। उफ ! कैसी आफत है ! कैसी लाचारी है ! मैं तो दिल से अभी काफिर हो रहा हूँ कि अपने धर्म के विरुद्ध भी बरबस कयामत का दिन मौत के साथ ही देख रहा हूँ। क्या काफिरों का ही यह खयाल नहीं है कि मरने के बाद ही हरेक जीव के गुण-कर्मों का निर्णय होता है ? विदित होता है, ऐसा कुफ्र चित्त में इसी लिये उठ रहा है कि मैं अपने पापों का बोझ बहुत ही भारी अनुभव कर रहा हूँ। मैं अब भी उन पापों की क्षमा के लिये खुदा और रसूल पर विश्वास नहीं कर सकता हूँ। सच पूछो तो मेरी

सारी जिन्दगी ही अविश्वास में बीती है। मैंने अपनी छाया का भी कभी विश्वास नहीं किया ; फिर रसूल और खुदा के ऊपर किस तरह विश्वास करता ? जो कुछ था, वह अन्धा दुराग्रह था। मैं जब अपने पाप-कर्मों की ओर दृष्टि फेरता हूँ, तो उन्हें गिनती से बाहर पाता हूँ। यह बात सच है कि पापियों को नरक मिलता है; किन्तु इस प्रकार की अनगिनती में मेरी क्या स्थिति होगी, मुझे किन परिणामों का भोग करना होगा, यह मैं नहीं जानता। परमात्मा ही जाने, मेरी क्या दशा होगी !

मैंने अपने जीवन में एक ही सवाब (पुण्य) किया है और बाकी सब गुनाह—(पाप) ही—गुनाह नजर आते हैं। वह सवाब है कि मैंने जिन्दगी-भर इस्लाम-धर्म की सेवा की है—इसके प्रचार में अपनी सारी शक्ति लगाई है; यहाँ तक कि इसके लिये मैंने जोर-जुल्म को भी उठा नहीं रक्खा है। मैंने 'जजिया' लगाकर विधर्मियों को दंडित किया है, मंदिरों को तोड़कर बुत-परस्ती (मूर्ति-पूजा) को नष्ट किया है, और उनके स्थान पर मसजिदें आदि बनवा कर इस्लाम को स्थापित किया है। लाखों काफिरों को तलवार के जोर से इस्लाम कबूल करवाया है और उनसे करोड़ों मुसलमान बच्चे पैदा करवाये हैं। मैंने मुसलमान-प्रजा के लिये अनेक सुविधायें की हैं और फतवा-आलमगीरी लिखकर इस्लाम की व्यवस्था की है। इस प्रकार, जहाँ तक हो सका, मैंने इस्लाम की भरपूर सेवा की है। यदि इन सेवाओं में कोई सवाब होगा, तो अवश्य मैं रसूल का कृपापात्र और ईश्वर का आशीष-भाजन

होऊँगा। यदि नहीं, तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं हो सकता! तुम पूछोगे कि इस्लाम के प्रति मुझे यह संदेह क्यों हो रहा है, किन्तु यथार्थ में इसका कारण है। इस्लाम के प्रति मेरी वही श्रद्धा और भक्ति है, जिसके बल पर मैंने दूसरे-दूसरे बादशाहों के समान भोग-विलास में अपने को नहीं खोया है, जिसके बल पर मैंने आज तक शराब छुआ तक नहीं, और जिसके कारण मैंने शाही खजाने के रुपये को अपना नहीं समझा। किन्तु, यह सब होने पर भी, मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने इस्लाम को ठीक से नहीं समझा। मैं इसकी बाहरी आज्ञाओं में ही व्यस्त रहा—इसके वास्तविक तत्व को मैंने नहीं जाना; मैंने अपने को नहीं पहचाना।

प्रिय पुत्र! इस्लाम के अंदर भी ऊँचे दार्शनिक विचार हैं, उन्हें हमारे सूफ़ियों ने उसी प्रकार विलग किये हैं, जैसे किसान भूसे से चावल को अलग करते हैं, और इन ऊँचे विचारों के सामने वे बाहिरी आज्ञायें गौण हो जाती हैं। मैं इतने बड़े साम्राज्य का अधिपति था—मेरे हाथों में कई करोड़ प्रजा का जीवन-मरण था—कितने राष्ट्रों की भलाई-बुराई थी, किन्तु इन सब कर्तव्यों का निर्वाह मुझ से कुछ भी न बन पड़ा। मैंने अपना सारा समय प्रजा-पीड़न, कोष-संग्रह, राज्य-वृद्धि, अत्याचार, द्वेष, शत्रुता, पक्षपात और न्याय में बिताया है। एक भी राष्ट्रधर्म या राजधर्म का पालन नहीं किया। मैंने किसी हितैषी का हितोपदेश नहीं सुना। मैंने किसी उपकारी का प्रत्युपकार नहीं किया। मैंने किसी को सेवा का पुरस्कार नहीं दिया, और न मैंने किसी योग्य पुरुष

का उचित सम्मान ही किया। कहाँ तक लिखूँ, मैंने अपने निकट से-निकट सम्बन्धियों के प्रति भी कोई अच्छा बर्त्ताव न किया। मेरा जीवन पाप, हत्या, लोभ, और धोखाबाजी से भरा हुआ है। प्रजा की शिक्षा, उन्नति और भलाई—जिसके लिये परमेश्वर राजा को राज्य देता है—मुझसे कोसों दूर रही है। मैंने महाराणा राजसिंह की सम्मति का निरादर किया, शिवाजी को अपमानित किया, जयसिंह को मरवा डाला, और सारी प्रजा को पीड़ित किया। इस प्रकार, मैंने चारों ओर अपने शत्रु-ही शत्रु खड़े किये हैं मित्र एक भी नजर नहीं आता। जिन मुल्लों और मौलवियों ने मुझे बराबर धोखे में रक्खा, वे भी मुझसे आज सन्तुष्ट नहीं हैं। इस-लिये अब मुगल-राज्य का भी भविष्य बहुत ही अन्धकार पूर्ण दृष्टिगोचर हो रहा है। इस समय मुझे अपने पिता शाहंशाह शाहजहाँ के एक पत्र की याद आती है, जिसको उन्होंने आगरे के किले से अंतिम बार भेजा था। हाय! मैं कितना पापी हूँ कि मैंने अपने सिंहासन को सहोदर भाइयों के रक्त से रंजित करके पिता के आँसुओं से धोना चाहा था। ऐसे पाप का परिणाम यह होना उचित ही था कि धुलने के बदले वह निरीह प्रजा की लोथों से और भी ढँक जाय।

आजम! मैंने ऐसी ही कलुषित शाही गद्दी पर ५१ वर्ष पर्यन्त राज्य किया है। ठीक इतने ही वर्षों के राज्य में हमारे प्रपितामह (परदादा) 'बादशाह अकबर' ने इस साम्राज्य को इतना सुदृढ़, विशाल और शक्तिशाली बनाया था; किन्तु मैंने उसे छिन्न

भिन्न और निर्बल बना दिया है। यद्यपि इसका विस्तार उस समय से कुछ अधिक ही है, तथापि मुझे विदित होता है कि मेरे मरने के बाद ही यह विशाल इमारत जादूगर की बेड़ियों की भाँति एक साधारण झटके से बिखर जायगी। तुम लोगों का कोई प्रयत्न इसको सँभाल न सकेगा। औरंगजेब ने प्रजा की जैसी भलाई की है, उसको प्रजा क्यों भूलने लगी। वह भूखी सिंहनी की भाँति टूट पड़ेगी, और सारा देश शीघ्र ही विद्रोह और अशान्ति से भर जायगा। अब सचमुच मुगल-राज्य की खैर नहीं है। मेरे नाम पर केवल तुम्हीं नहीं—केवल बेदरबख्त ही नहीं—वरन् तुम्हारी और उसकी आने वाली संतान भी—रोयेगी तथा मुझे गाली देगी कि मैं सब को उत्तराधिकार से वंचित कर रहा हूँ।

किन्तु मुझे क्या कहते हो! अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। रोना-धोना व्यर्थ है। खुदा के सामने जो मेरी दुर्गति शेष है, वह तो पाऊँगा ही; किन्तु तुम्हें इतना कहे जाता हूँ कि तुम्हें यदि मुगल-राज्य की रक्षा करनी हो, तो मराठों से होशियार रहना, राजपूतों से मिले रहना, और प्रजा में पक्षपात न करना। मैं जिन्दगी-भर इस्लाम का अध्ययन करके इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि जबरदस्ती करने से कोई सवाब नहीं मिलता, बल्कि राजा को इसमें पाप ही होता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में सब प्रजा बराबर है। मुझे भय है कि इतना करने पर भी तुम्हारा कोई विश्वास नहीं करेगा; क्योंकि मैंने निर्दयता-पूर्वक सबके साथ विश्वासघात किया है। अब अधिक लिखना व्यर्थ है। परमात्मा

तुम्हारी रक्षा करे। वही तुम्हें इस विशाल राज्य के सँभालने का बल दे। अब आओ, देर न करो। यों तो कुशल क्षेम पाने के लिये चित्त चिन्तित है ही, तिस पर से छावनी में कई प्रकार के भावों का संचार हो रहा है—सर्वत्र भय, शंका और अविश्वास ही सुन पड़ता है। मुझे भी पूरा भय है कि राजपूत लोग शीघ्र ही स्वतंत्रता की घोषणा करेंगे—मराठे लूट-पाट मचायेंगे—फिरँगी लोग भी, जो इस देश में कुछ दिनों से व्यापार करने के लिये आये हैं, कुछ-न कुछ करेंहीगे। बस, मैं अकेला आया था, और अकेला ही जाना चाहता हूँ। राज्य, कोष, सेना, किला आदि का कुल भार तुम्हारे ऊपर अर्पण करना ही शेष है। इसलिये विलम्ब न करो।

तुम्हारा—भयभीत पिता
औरंगजेब

अभ्यास

१—औरंगजेब को किन किन बातों का भय प्रतीत हो रहा था ?

२—औरंगजेब को अपने ईश्वर के समक्ष जाते हुए डर क्यों लग रहा था ?

३—इस्लाम का अध्ययन करने से औरंगजेब किस सिद्धान्त पर पहुँचा था।

४—औरंगजेब के इस पत्र से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

३५—यशोदा जी का पुत्र-प्रेम

अहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों आज आया ।
निज प्रिय सुत से जो मैं जुदा हो रही हूँ ।
अगणित गुण वाली प्राण से नाथ प्यारी ।
यह अनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूँ ॥ १ ॥

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही ।
नहिं कुँवर कहीं भी आज लौं हैं सिधारे ।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना ।
कुछ दुख पथ मेरे बालकों को न होवे ॥ २ ॥

खर पवन सतावे लाड़िलों को न मेरे ।
दिनकर किरणों की ताप से भी बचाना ।
यदि उचित जँचे तो छाँह में भी बिठाना ।
मुख सरसिज ऐसा म्लान होने न पावे ॥ ३ ॥

विमल जल मँगाना देख प्यासा पिलाना ।
कुछ क्षुधित हुए हो व्यंजनों को खिलाना ।
दिन बदन सुतों का देखते ही बिताना ।
प्रफुलित अधरों को सूखने भी न देना ॥ ४ ॥

यह तुरंग सजीले वायु से वेग वाले ।
अति अधिक न दौड़ें यान धीरे चलाना ।
बह हिल कर हाहा कष्ट कोई न देवे ।
परम मृदुल मेरे बालकों का कलेजा ॥ ५ ॥

नगर विविध ऐसी वाम भी हैं दिखाती।
सब नहिं जिनकी हैं वामता बूझ पाते।
सकल समय ऐसी साँपिनों से बचाना।
वह निकट हमारे लाड़िलों के न आवें॥ ६॥

जब नगर दिखाने के लिये नाथ जाना।
निज सरल कुमारों को खलों से बचाना।
सँग ही सँग रखना साथ ही गेह लाना।
युग सुअन दृगों से दूर होने न पावें॥ ७॥

धनुख मख सभा में देख मेरे सुतों को।
तनक भृकुटी टेढ़ी नाथ जो कंस की हो।
अवसर लख ऐसे यत्न तो सोच लेना।
न कुपित नृप होवें औ बचें लाल मेरे॥ ८॥

यदि विधि वश सोचा भूप ने और ही हो।
यह विनय बड़ी ही दीनता से सुनाना।
हम बस न सकेंगे जो हुई दृष्टि मैली।
युग सुअन यही हैं जीवनाधार मेरे॥ ९॥

लख कर मुख सूखा सूखता है कलेजा।
हृदय दहकता है आग देखे दुखों के।
प्रिय पति सुत के जो आपदा शीश आई।
यह अवनि फटेगी औ समा जाउँगी मैं॥ १०॥

जग कर कितनी ही रात मैंने बिताई।
यदि तनक कुमारों को हुई बेकली थी।

यह हृदय हमारा भग्न कैसे न होगा।
यदि कुछ दुख होगा बालकों को हमारे ॥ ११ ॥
बहु निशि नहिं मैंने शीत को शीत जाना।
थर थर कँपती थी औ लिये अंक में थी।
यदि सुखित न यों भी देखती लाल को थी।
सब रजनि खड़े और घूमते थी बिताती ॥ १२ ॥
निज सुख अपने मैं ध्यान में भी न लाई।
प्रिय सुत सुख ही से मैंने न देखा।
अहह ! दुखित कैसे लाड़िले को लखूँगी।
मुख तक कुम्हलाया नाथ मैंने न देखा ॥ १३ ॥
यह समझ रही हूँ और हूँ जानती ही।
हृदय धन तुम्हारा भी यही लाड़िला है।
पर बिवस भई हूँ जी नहीं मानता है।
यह विनय इसी से नाथ मैंने सुनाई ॥ १४ ॥
अब अधिक नहीं मैं भाखना चाहती हूँ।
अनुचित मुझसे है नाथ होता बड़ा ही।
निज युग कर जोड़े ईस से हूँ मनाती।
सकुशल गृह लौटे नाथ ले लाड़िलों को ॥ १५ ॥

अभ्यास

१—३, ४, ५ छन्दों के अर्थ लिखो।

२—इस कविता में माता के प्रेम की जो छाया तुमको दिखलाई देती है, उसको अपनी भाषा में लिखो।

२—इनके अर्थ लिखो तथा इनको वाक्यों में प्रयोग करो—

मृदुल, सरल, नामता, शीत, अवनि, थाती।

३६—कृषि

पाठको! यह तो तुम जानते ही हो कि भारतवर्ष में अधिकतर लोग गाँवों में रहते हैं और उनमें से बहुतों के लिये खेती का ही धन्धा मुख्य है। वे या तो खेती करते हैं, या खेती करने वालों के काम में किसी न किसी प्रकार की सहायता करते हैं। हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि कुल मिला कर तेईस करोड़ अर्थात् सौ पीछे तिहत्तर आदमियों की आजीविका खेती से ही चलती है। सरकार को भी खेती से बहुत लाभ है। सेना, पुलिस, अदालतें, जेल और स्कूल आदि के लिये बहुत ख़र्च की ज़रूरत होती है। उन विभागों से आमदनी बहुत कम होती है। परन्तु खेती से तो ख़र्च काट कर भी सरकार को बड़ी बचत होती है और इस बचत से सरकार के अन्य विभागों का काम चलता है। वास्तव में प्रत्येक प्रान्त की सरकार के लिये आमदनी की सब से बड़ी मद खेती की मालगुज़ारी है। इस लिए प्रजा तथा सरकार दोनों की दृष्टि से खेती की उन्नति बहुत आवश्यक तथा लाभकारी है।

भारतवर्ष में कृषि की अवनति के कारण अधिकतर खेती की दशा अच्छी नहीं है। भारतवर्ष की जन-संख्या तथा

क्षेत्रफल को देखते हुए, यहाँ की पैदावार बहुत कम है। यहाँ अन्य देशों की तुलना में, फ़ी आदमी अथवा फ़ी एकड़ भूमि की उपज में बड़ी कमी है।

इसके मुख्य कारण किसानों की दरिद्रता तथा अज्ञान है। उनके पास प्रायः इतनी पूँजी नहीं होती कि वे नये यंत्र, बढ़िया खाद, उत्तम बीज आदि ख़रीद कर काम में ला सकें। अथवा खेतों में पानी देने के लिए कुए आदि जितने चाहिए, खुदवा सकें। भारतवर्ष में खेती पशुओं की सहायता से होती है। अन्य देशों की तरह यहाँ मशीनों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग नहीं किया जाता। इस लिये यहाँ पशुओं की रक्षा, उन्नति और चिकित्सा आदि की विशेष आवश्यकता है, इन बातों का यथेष्ट प्रबन्ध न होने से भी यहाँ खेती अवनत अवस्था में है।

इसके अलावा भारतवर्ष के अधिकतर लोगों में यह रिवाज है कि किसी आदमी के मरने पर, अन्य सम्पति के साथ उसकी भूमि भी उसके बाल बच्चों में बँट जाती है। इसका फल यह हुआ कि अनेक आदमियों के हिस्से में ज़मीन का छोटा छोटा टुकड़ा रह गया, अनेक स्थानों में तो ऐसा भी हो गया है कि एक आदमी की थोड़ी सी ज़मीन यहाँ है और थोड़ी सी बहुत दूर जाकर है। इससे उनमें खेती करना तथा उनकी देख रेख करना बहुत कठिन हो जाता है, और ख़र्च भी अधिक पड़ता है।

किसानों तथा ज़मींदारों को चाहिए कि सरकार की सहायता से कृषि-सम्बन्धी उपर्युक्त असुविधाओं को दूर करने का यत्न करें, सरकारी कृषि-विभाग से लाभ उठावें तथा उसकी कार्य-पद्धति को अपने लिये अधिक से अधिक उपयोगी बनावें।

कृषि विभाग—कृषि की उन्नति के लिए भारतवर्ष में एक सरकारी कृषि विभाग स्थापित है। उसका प्रधान अधिकारी इन्सपेक्टर जनरल कहलाता है। अलग अलग प्रान्तों में खेती का डायरेक्टर तथा उसके नीचे डिप्टी डायरेक्टर, एसिस्टेंट डायरेक्टर, इंजिनियर आदि रहते हैं।

इस विभाग के अफसरों के प्रयत्नों से कृषि के सम्बन्ध में विशेषतया भिन्न भिन्न प्रकार की ज़मीनों में उचित खादों के उपयोग; अच्छे बीज, पौदों के रोग और उनके निवारण, नयी तरह के औज़ारों के उपयोग और नये तरीकों से खेती करने के सम्बन्ध में—कई उत्तम बातों का ज्ञान प्राप्त हो चुका है। हाँ, सर्वसाधारण में अभी तक इस ज्ञान का यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ, कारण उन्हें अँग्रेज़ी तो क्या देशी भाषा भी तो पढ़नी नहीं आती, उनमें शिक्षा का प्रचार बहुत कम है, और जब तक कि सरकारी कर्मचारी उन्हें इस विषय को भली भाँति समझाने तथा उनकी शंकाओं को निवारण करने का विशेष रूप से उद्योग न करें, सरकारी फ़ार्मों या नुमायशों से किसानों को काफी लाभ नहीं होता।

किसानों की आर्थिक सहायता—कृषि सम्बन्धी बहुत से

सुधार ऐसे हैं, जिनकी उपयोगिता किसानों की समझ में अच्छी तरह आजाने पर भी, वे उनसे समुचित लाभ इसलिए नहीं उठा सकते कि वे प्रायः बहुत ग़रीब और ऋण-ग्रस्त हैं। किसानों को सहूकारों से बहुत अधिक सूद पर रुपया उधार मिलता है। सरकार उन्हें भूमि की उन्नति करने, पशु, बीज तथा कृषि सम्बन्धी अन्य वस्तुओं का ख़रीदने के लिए कम सूद पर रुपया उधार देती है इसे 'तकावी' कहते हैं। किसानों की बड़ी संख्या तथा उनकी अनेक आवश्यकताओं के लिए उन्हें बहुधा काफ़ी "तक़ावी" नहीं मिल सकती। सहकारी समितियों से उन्हें बहुत लाभ पहुँच सकता है।

कृषि शिक्षा—कृषि शिक्षा के लिए कुछ स्थानों में कृषि कालिज खुले हुए हैं। पूसा (बिहार) में एक बड़ा कृषि-कालिज है, उसके साथ-कृषि-विज्ञान-शाला. तथा पशु-शाला है। वहाँ अनुभव के लिये खेती की जाती है, जिससे खेती के सम्बन्ध में नयी नयी खोज हो, खेती के रोगों को दूर करने के उपाय काम में लाये जायँ। इसके अतिरिक्त, पूना, सेदापट (मदरास), कानपुर, नागपुर, शिवपुर (बङ्गाल), लायलपुर (पंजाब), आदि स्थानों में कृषि-कालिज हैं। इनमें कृषि सम्बन्धी उच्च शिक्षा दी जाती है। परन्तु उनमें शिक्षा अँगरेज़ी भाषा द्वारा दी जाती है, यदि देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा दी जाय तो उनसे अधिक लाभ हो सकता है।

भारतवर्ष में जहाँ तहाँ कुछ कृषि विद्यालय भी हैं। इनमें

साधारण शिक्षा के अतिरिक्त कृषि के सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती है, तथा इस विषय का व्यावहारिक अनुभव भी कराया जाता है। कृषि के लिए विशेष प्रकार के ऐसे स्कूलों की बड़ी आवश्यकता है, जो किसानों के लड़कों की सुविधाओं का यथेष्ट ध्यान रखें। इनकी शिक्षा निश्शुल्क हो और इनकी परिपाटी इस तरह की हो कि इनकी शिक्षा पाने वाले कृषि को घटिया दर्जे का काम समझ कर इसे छोड़ने का विचार न करने लगें, वरन् इसे और भी अधिक उत्साह से तथा कुशलता-पूर्वक कर सकें। इन स्कूलों में हिसाब और विज्ञान आदि की शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिये जो किसानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो।

अभ्यास

१—भारतवर्ष में किन किन स्थानों में कृषि-कालिज हैं?

२—भारतवर्ष में कृषि की अवनति के कौन कौन कारण हैं?

३—सरकार किसानों की सहायता किस प्रकार करती है? उसका नाम क्या है?

४—शब्दार्थ लिखो—

सहकारी, तुलना, निवारण, वैज्ञानिक, आर्थिक, निश्शुल्क।

३७—वनाष्टक

(१)

प्रेम की मूल सलौनी लता,
बिलसैं द्रुम अंगन सों लिपटीं।
नव पल्लव संग प्रसून खिले,
रचैं रंग बिरंगित चित्रपटी॥

बिटपावली बेलैं बनावैं बितान,
अनेकन एक सों एक सटी।
बन भूमि की ऐसी छबीली छटा,
अलि के उर अन्तर आनि अटी॥

(२)

चारु हिमाचल आँचल में,
एक साल बिसालन कौ बन है।
मृदु मर्मर सील झरैं जल स्रोत हैं,
पर्वत ओट है, निर्जन है।
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन,
प्रवीन विहंगम कौ गन है॥
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरैं,
मदबावरौ सौ अलि कौ मन है॥

(३)

कोइल तू कल बोलनी री!
शुक प्यारे हरे पट धारे अहो।
भोरी मैना सुनैना रसीलेन की,
सो परेवा परेई के प्यारे अहो॥
अहो मोरा मचावन शोरा, चकोरा,
पपीहा पिया रटवारे अहो।
बन के तुम बाँके सदा के धनी,
बन जीवन प्रान तिहारे अहो॥

(४)

झिल्ली करैं झनकार कहूँ,
फुसकारत साँपिन रोस भरी।
पट घुग्घू डरावने बोलत बोल,
बिलापै बिलार घरी पै घरी॥
कहुँ हूकत स्यार हैं, भूकत ल्यार,
लराई लरैं लहि लास भरी;
नीसि भीसन भावने था मन की,
बनवास की वासना नास करी॥

(५)

विन्ध्य के वन्य विभाग में एक;
सरोवर स्वच्छ सुहावना है।
कमलों से भरा, भ्रमरों से घिरा,
बिटपों से सजा, मन भावना है॥
कलहंस स्वतन्त्र कलोल करैं,
खग वृन्द का बोल लुभावना है।
बहै मन्द समीर पराग लिये,
अनुराग हिये हुलसावना है॥

(६)

जेठ को दारुन आतप से,
तप के जगतीतल जावै जला।
नभ मण्डल छाया मरुस्थल सा,
दल बाँध के अन्धड़ आवै चला॥

जलहीन जलाशय, व्याकुल हैं,

पशु पत्ती, प्रचण्ड है भानुकला ॥

किसी कानन कुंज के धाम में,

प्यारे, करैं बिसराम चलौ तौ भला ॥

(७)

काली घटा का घमण्ड घटा,

नभ मण्डल तारकावृन्द खिले।

उजियाली निशा, छबिशाली दिशा,

अति सोहैं धरातल फूले फले॥

निखरे सुथरे बग पन्थ खुले,

तरु पल्लव चन्द्रकला से धुले।

बन सारदी चन्द्रिका-चादर ओढ़े,

लसैं समलंकृत कैसे भले!

(८)

भारत में वन! पावन तू ही,

तपस्वियों का तप-आश्रम था।

जग-तत्व की खोज में लग्न जहाँ,

ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था॥

जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था,

सात्विक जीवन का क्रम था।

महिमा वनवास की थी तब और,

प्रभाव पवित्र अनूपम था॥

पं श्रीधर पाठक

३८—रानाप्रताप के यहाँ मानसिंह का आतिथ्य

प्रथम गर्भाङ्क

(स्थान उदयपुर—महाराज मानसिंह का आतिथ्य—एक सुसज्जित कमरा—महाराज मानसिंह और कुँवर अमरसिंह बैठे हैं। भामाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं।

(नेपथ्य में गान)

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छवि पै रे खद्योत इठलात॥
है दिन चारि साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात॥
भानु उदय कहुँ देखि न परि है कोउ न पूछि है बात।
रविकुल रवि प्रताप के आगे रिपुकुल मानत मात॥

मानसिंह—(स्वगत) यहाँ के ढंग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्हीं पर है। अच्छा देखें यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राना जी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किये हैं; परन्तु अब तक आप क्यों नहीं पधारे?

मन्त्री—(हाथ जोड़ कर) हुकुम अन्नदाता जी आज श्री हुजूर का शरीर अच्छा नहीं है, कुँवर जी, तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिये शास्त्रों ने भी कहा है "आत्मा वै जायते पुत्रः।"

मानसिंह—हाँ आप का कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी, हमारे तो यह सिरताज ही है, परन्तु जब तक श्री एकलिंग जी की कृपा से राना जी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायेगी, और आप न पधार कर लड़कों को भेजना अपने घर में आये हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राना जी से बिनती कीजिये, हमारी जो भूलचूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मन्त्री—नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिये। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह—(दर्प के साथ मूछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राना जी ने अपने घर आये हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं (चावल के दाने पगड़ी पर रख कर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्दी फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे कि मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।

(चलने को उद्यत होते हैं)

राणा प्रताप

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं)

प्रतापसिंह—सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोय दई आपनी बड़ाई॥
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनको मुख बीर सबै सिर रहे नवाई॥
तिनके संग खानो कहा मुख देखत हू पाप है।
जाइ सीस वरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है॥

अच्छा अब आप सुख से पधारिये और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथि सेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिए यही प्रार्थना है।

(मानसिंह क्रोध के साथ राजा की ओर देखते जाते हैं)

प्रतापसिंह—मंत्री—

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो।
ताहि आज या कुल कलंक नै पायन परस्यो॥
तातें याहि धुवाई शुद्ध गंगोदक छिरकौ।
नाना विधि दै धूप वायु के मलकों हिरकौ॥
हमहुँ सवत्सागाय दान विप्रन को दैहीं।
मुख देखन को पाप प्रायछित निज कर लैहीं॥
अहो वीरगण निर्भय रहो सचेत सदाई।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं।

कोउ न कहै नहिं रहे वीर छत्री भारत महिं ॥
बहु देसनि करि विजय ब्याह अधमन को बाला।
अकबर को मन बहकि रह्यो धनमद एहि काला ॥
गर्व खर्व करि थापि आपुनी हाँक तासु जिय।
अहो बहादुर चूकौ जिन अवसर न हाथ दिय ॥
जहँ साहस जहँ धर्म जहाँ साँचे सब संगी।
तहीं जय निहचय तासों सब होहु इकंगी ॥

सब—महाराज ऐसा ही होगा।

द्वितीय गर्भाङ्क

(स्थान उदय पुर—राणा चिन्तित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं)

प्रताप—पुरोहित जी! कल का वृत्तान्त तो आपने सुना ही होगा अब बहुत शीघ्र मेवाड़ में समराग्नि भभकना चाहती है।

पुरोहित—हुकुम अन्नदाता जी, मैंने सब सुना है मुझे तब से बड़ी चिन्ता है।

प्रताप—चिन्ता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा असमर्थ समझते हैं?

पुरोहित—नहीं अन्नदाता जी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परन्तु मुझे इस लड़ाई में देश की महान दुर्दशा दिखाई पड़ती है, इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष में मुसलमानों की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही

नहीं वरञ्च असम्भव है फिर व्यर्थ बैठे बैठाये देश को उजाड़ करने से क्या लाभ ? अब हमारा उनका चोली-दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिये जिससे आपस में भ्रातृ-भाव बढ़े।

प्रताप—पुरोहित जी ! आप का कहना ठीक है; पर आपने इसका पूरा वृत्तान्त नहीं सुना है इसी से ऐसा कहते हैं नहीं तो कदापि ऐसा न कहते। प्रतापसिंह क्षत्रिय संतान है— क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि का नाश करें और उसके आगे अपराधी बनें, दूसरे हम लोग हिन्दू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यन्त उदार भावपूर्ण है, प्राणिमात्र की रक्षा करना हमारा धम है, फिर यह क्यों कर सम्भव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्यों वे लोग उसी जगत् पिता के संतान नहीं हैं ? परन्तु महाराज, हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें। जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते। देखिये हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पण किया जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़ कर पुत्र रत्न को गवाँ कर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर—उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसलमानी झंडा फहराय और हम उसे

सुख से देखें ! हमारे आर्य भाइयों को मुसलमान बनावें और हम आँख बन्द कर लें ?

पुरोहित—धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं; परन्तु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं ? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गौरांगों का राज्य होगा फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे बैठाये अपने ऊपर झगड़े खड़े करने से क्या लाभ ?

प्रताप—पुरोहित जी ! यह आप क्या कहते हैं ? क्या यह समझ कर कि कल तो हमको मरना ही है आज से ही खाना पीना छोड़ देना उचित है ? आप निश्चय रखिये अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक योरुप का विद्वान अकबर के दर्बार में है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस दिन इन सभों के हाथ से यह राज्य निकल जायेगा, परन्तु क्या यह सब सोच विचार कर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिए ? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसकी प्रार्थना अनुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय ?

पुरोहित—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है ?

उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है ? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिये।

प्रतापसिंह—गुरुदेव !

जेहि मुखतें ये बैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलंकित वचन उचारे॥
करि वंश क्षत्रिय कुल कलंक ह्वै चार विचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आज सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहिं तुव पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुखसों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित—अन्नदाता जी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्रीएकलिंग जी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सब से पहिले एकलिंग जी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष में आज पूजन करें।

प्रताप—अवश्य चलिये।

(दोनों का प्रस्थान)

अभ्यास

१—" क्यों तू गुमान इतरात " इस सम्पूर्ण गीत का भावार्थ समझाओ इस स्थान पर यह गीत क्यों गाया गया इस पर भी पूर्ण प्रकाश डालो।

२—" शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी " इसका भावार्थ समझाओ।

३—इस पाठ में प्रताप के आदर्श की क्या विशेष बात दिखाई देती है ?

३६—परशुराम-लक्ष्मण संवाद

तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा।
आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने।
बाज-झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा।
भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि-बदन सुहावा।
रिसि-बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी-कुटिल नयन रिसि राते।
सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
बृषभकंध उर बाहु बिसाला।
चारु जनेउ माल मृग-छाला॥
कटि मुनि-बसन तून दुइ बाँधे।
धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

दो०—संत-बेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि-तनु जनु बीर-रस, आयउ जहँ सब भूप॥

देखत भृगु-पति-बेषु कराला।
उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु-समेत कहि निज निज नामा।
लगे करन सब दंड-प्रनामा॥

जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी।
सो जानइ जनु आयु खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा।
सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्ह सखी हरषानी।
निज समाज लेइ गई सयानी॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई।
पद-सरोज मेले दोउ भाई॥
राम लषन दसरथ के ढोटा।
दीख असीस दीन्ह भल जोटा॥
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन।
रूप अपार मार-मद-मोचन॥

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाये।
जेहि कारन महीप सब आये॥
सुनत बचन तब अनत निहारे।
देखे चाप-खंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू।
उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू॥

अति डर उतर देत नृप नाहीं।
कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी।
सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय-महतारी।
बिधि बनाइ सब बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाव मुनि सीता।
अरध-निमेष कलप-सम बीता॥

दो०—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर॥

नाथ संभु-धनु-भंजनि-हारा।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही।
सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करइ सेवकाई।
अरि-करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेइ सिव-धनु तोरा।
सहस-बाहु-सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।
नतु मारे जइहैं सब राजा॥
सुनि मुनिबचन लषन मुसुकाने।
बोले परसुधरहिं अपमाने॥

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं।
कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू।
सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू॥

दो०—रे नृप बालक कालबस, बोलत तोहि न संभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि-धनु, बिदित सकल संसार॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना।
सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जीर्न धनु तोरे।
देखा राम नये के भोरे॥
छुवत टूटि रघुपतिहु न दोषू।
मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥
बोले चितय परशु की ओरा।
रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा॥
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही।
केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल-ब्रह्मचारी अति-कोही।
बिस्व-विदित क्षत्रिय-कुल-द्रोही॥
भुज-बल भूमि भूप बिनु कीन्हीं।
विपुल बार महि-देवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु-भुज छेदनि-हारा।
परसु बिलोकु महीप-कुमारा॥

दो०—मातु-पितहि जनि सोच बस, करसि महीप-किसोर।
गरभन के अरभक-दलन, परसु मोर अति घोर॥

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी।
अहो मुनीस महा भट मानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू।
चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना।
मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना॥
भृगु-कुल समुझि जनेउ बिलोकी।
जो कछु कहेउ सहउँ रिस रोकी॥
सुर महि-सुर हरि-जन अरु गाई।
हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अप-कीरति हारे।
मारतहू पा परिय तुम्हारे॥
कोटि-कुलिस-सम बचन तुम्हारा।
व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महा-मुनि धीर।
सुनि सरोष भृगु-बंस-मनि, बोले गिरा गँभीर॥

कौसिक सुनहु मंद यह बालक।
कुटिल काल बस निज-कुल-घालक॥

भानु - बंस - राकेस - कलंकू।
निपट निरंकुस अबुध असंकू॥
काल-कवलु होइहि छन माहीं।
कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू।
कटु-बादी बालक बध-जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा।
अब यह मरन हार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिय अपराधू।
बाल-दोष-गुन गनहि न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही।
आगे अपराधी गुरु-द्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारे।
केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न तु एहि काटि कुठार कठोरे।
गुरुहि उरिन होतेउँ स्रम थोरे॥

दो०—गाधि-सुनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥
लषन-उतर आहुति सरिस, भृगु-बर-कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल-सम-बचन, बोले रघु-कुल-भानु॥

नाथ करहु बालक पर छोहू।
सूध दूध-मुख करिय न कोहू॥

जौं पै प्रभु-प्रभाउ कछु जाना।
तौ कि बराबरि करत अयाना॥
जौं लरिका कछु अनुचित करहीं।
गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी।
तुम्ह सम-सील धीर मुनि ग्यानी॥
राम-बचन सुनि कछुक जुड़ाने।
कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख-सिख रिस ब्यापी।
राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं।
काल-कूट-मुख पय-मुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही।
नीच मीच-सम देख न मोही॥

दो०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु-समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी।
बोले राम जोरि जुग-पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना।
बालक बचन करिअ नहिं काना॥
बररै बालक एक सुभाऊ।
इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥

तेहि नाहीं कछु काज बिगारा।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बन्ध गोसाईं।
मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई।
मुनि नायक सोइ करउँ उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे।
अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा।
तो मैं काह कोप करि कीन्हा॥

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप-रमणि, सुनि कुठार-गति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, वैरी भूप-किसोर॥

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती।
भा कुठार कुंठित नृप-घाती॥
भयउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ।
मोरे हृदय कृपा कसि काऊ॥
बंधु कहइ कटु संमत तोरे।
तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर संग्रामा।
नाहिं त छाँड़ कहाउब रामा॥
छल तजि करहि समर सिव-द्रोही।
बन्धु-सहित न त मारउँ तोही॥

राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा।
कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी।
मोहि जानिय आपन अनुगामी॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु बिप्र-बर रोसु।
बेष बिलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु॥

देखि कुठार-बान-धनु धारी।
भइ लरिकहि रिस बीर बिचारी॥
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा।
बंस-सुभाव उतर तेइ दीन्हा॥
भृगुपति कहत कुठार उठाये।
मन मुसुकाहिं राम सिर नाये॥
गुनहुँ लषन कर हम पर रोषू।
कतहुँ सुधाइहुँ ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि शंका सब काहू।
बक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू॥
जौं तुम्ह श्रवतेहु मुनि की नाईं।
पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी।
चहिय बिप्र-उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुमहिं सरबर कस नाथा।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥

राम मात्र लघु नाम हमारा।
परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुन धनुष हमारे।
नव-गुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे।
छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

दो०—बार बार मुनि बिप्र-बर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूँ बंधु-सम बाम॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही।
मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू।
कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिध सेन चतुरंग सुहाई।
महा महीप भये पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे।
समर-जग्य जग कोटिक कीन्हे॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे।
बोलसि निदरि बिप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा।
अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी।
रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥

छुवतहि टूट पिनाक पुराना।
मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना॥

दो०—जौं हम निदरहिं विप्रवदि, सत्य सुनहु भृगु-नाथ।
तौ अस को जगसुभट्ट जेहि, भय-बस नावहिं माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना।
सम-बल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि प्रचारइ कोऊ।
लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रिय-तनु-धरि समर सकाना।
कुल-कलंक तेहि पाँवर जाना॥
कहउँ सुभाव न कुलहिं प्रसंसी।
कालहु डरहिं न रन रघु-बंसी॥
बिप्र बंस कै असि प्रभुताई।
अभय होइ जो तुम्हहिं डराई॥
सुनि मृदुवचन गूढ़ रघुपति के।
उघरे पटल परसु-धर-मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु मिटै मोर सन्देहू॥
देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ।
परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

दो०—जाना राम-प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात॥

जय रघुबंस - बनज - बन - भानू ।
गहन - दनुजकुल - दहन कृसानू ॥
जय सुर - बिप्र - धेनु - हित - कारी ।
जय मद - मोह - कोह - भ्रम - हारी ॥
बिनय - सील - करुना - गुन - सागर ।
जयति बचन-रचना अति नागर ॥
सेवक-सुखद सुभग सब अंगा ।
जय सरीर-छवि कोटि अनंगा ॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा ।
जय महेस - मन - मानस - हंसा ॥
अनुचित बचन कहेउँ अग्याता ।
छमहु छमा-मन्दिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू ।
भृगुपति गये बनहिं तप हेतू ॥

अभ्यास

१—परशुराम जी की संक्षिप्त जीवनी बताओ ।

२—परशुराम और लक्ष्मण की बातचीत का दृश्य गद्य में लिखो और नाटक की भाँति उसका अभिनय करो, कहीं कहीं तुलसीदास की चौपाइयों का भी प्रयोग करो ।

३—परशुराम जी को रामचन्द्र ने किस प्रकार सन्तुष्ट किया ?

४—रघुवंश-बनज-बन भानू, सुर-बिप्र-धेनु-हित-कारी इनके समास बतलाओ ।

४०—समुद्र-यात्रा का आनन्द

समुद्र-यात्रा का मज़ा वर्षा ऋतु में अरब-सागर पार करते समय बम्बई और अदन के बीच मिलता है। उस समय की बात याद आते ही इस समय भी रोमांच हो आता है और साथ ही हँसी भी आती है। एक ओर भारत छोड़ने का खेद और दूसरी ओर समुद्र की बीमारी।

बम्बई में अगस्त में वर्षा का पूर्ण रूप दिखाई पड़ता है। रात दिन की वर्षा से चित्त व्याकुल हो जाता है। ऐसे समय समुद्र के किनारे चौपाटी पर जाकर समुद्र के दर्शन करने और उसके भयङ्कर और उग्र रूप को देखने से हृदय में डर पैदा होता है। हृदय की ऐसी अवस्था में जहाज़ पर आना ही एक तो बुरा है। तिस पर किनारे को छोड़ते एक ही घंटे बाद समुद्र में पहुँच जाने से चक्कर का आना ऐसा शुरू होता है कि मनुष्य के होश गुम हो जाते हैं—भयङ्कर लहरों के साथ जहाज़ के ऊपर नीचे होने के कारण तबीयत मिचलाने लगती है और उलटी का सिलसिला जारी हो जाता है। जहाज़ की छत पर समुद्र का पानी बड़े वेग से आने लगता है और यह प्रतीत होता है कि जहाज़ टुकड़े टुकड़े होकर शीघ्र ही रसातल में पहुँचना चाहता है। ऐसी दशा में सब यात्री छत से नीचे उतार दिए जाते हैं और अपनी अपनी बन्द कोठरियों में जाकर झूठमूठ बिस्तर कहलाने वाली वस्तु पर लेट जाते हैं। परन्तु आराम कहाँ? तबीयत मिचलाती है, उलटियाँ

जारी ही रहती हैं और मन इतना मलिन और व्याकुल रहता है जितना शायद और किसी भी बीमारी में नहीं रहता। ऐसी अवस्था को सी-सिकनेस (समुद्र की बीमारी) कहते हैं। यह एक विचित्र बीमारी है। जहाज़ के ऊपर नीचे होने के कारण यात्री के पेट में इतनी खलबली मच जाती है कि उसके भीतर कोई चीज़ नहीं रह सकती।

परन्तु देखने में आया है कि यह समुद्र की बीमारी किसी को अधिक और किसी को कम होती है। जहाज़ के मल्लाहों को जहाज़ पर सब तरह की अवस्था में रहने का इतना अभ्यास हो जाता है कि उन्हें भयङ्कर से भयङ्कर तूफ़ान में भी कुछ पता नहीं चलता। क्रोध तो उस समय आता है जब हम तो बीमार पड़े हुए व्याकुलता से आह मार रहे हों और एक मल्लाह आनन्द से विचरता और हमारी हीन अवस्था को देखकर हँसता है। अधिक व्याकुल होकर जब कोई बीमार यात्री जहाज़ के डाक्टर को बुलाता है तब डाक्टर भी हँसकर कह देता है कि कुछ चिन्ता की बात नहीं, शीघ्र अच्छा हो जायगा। उस समय ऐसा मालूम होता है मानों सारे संसार ने हमारे विरुद्ध जाल सा रच रक्खा है।

देखने में आया है कि मनुष्य की प्रकृति और स्वास्थ्य के अनुसार यह बीमारी किसी को अधिक और किसी को कम होती है। इसके सिवा दो चार बार समुद्र-यात्रा कर लेने पर भी यह बीमारी कम होती है।

मेरी दूसरी समुद्र-यात्रा में मेरे साथ मेरे एक मित्र थे। बम्बई छोड़ते ही ये सज्जन बीमार हो गये थे; परन्तु मैं करीब करीब चङ्गा था। मुझे इधर उधर घूमते और आनन्द से भोजन करते देखकर मेरे मित्र को आश्चर्य होता था, क्योंकि वे सारी यात्रा में लगभग बीमार ही पड़े रहे। उन्हें यह शक होने लगा कि मेरी सहानुभूति उनसे नहीं है और मुझे कोई ऐसी औषधि मालूम है जिसे सेवन करने से मैं चङ्गा रहता हूँ और उन्हें नहीं बतलाता। परन्तु वास्तव में बात यह है कि इस बीमारी में कोई भी सहायता फलीभूत नहीं होती। मेरी वापसी की यात्रा में मेरे जहाज़ पर एक पारसी युवा कन्या मार्सेल से चढ़ी; पर यात्रा के आरम्भ से समाप्ति तक वह बराबर बीमार ही पड़ी रही और बम्बई में उतरने पर उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो गया था।

इंगलैंड से जहाज़ पर सवार होकर मार्सेल आने में बीच में पुर्तगाल देश के पश्चिमी तट पर बिस्के की खाड़ी बड़ी भयानक और विकट मिलती है। कोई भी मौसम क्यों न हो, इस भयानक खाड़ी को पार करने में प्रायः बड़ा कष्ट होता है। ख़ास कर जाड़े की ऋतु में तो ज़रूर तूफ़ान का सामना करना पड़ता है। वे लोग बड़े भाग्यशाली समझे जाते हैं जो शान्तिपूर्वक इस खाड़ी को तय कर लें।

जाड़े में इंगलैंड से अमेरिका जाते समय भी बहुधा तूफ़ान का सामना करना पड़ता है। इस यात्रा में सन्तोष की बात

यह है कि जहाज़ बहुत बड़े बड़े होते हैं। उनका वजन इतना अधिक होता है कि समुद्र की तेज़ और शक्तिशाली लहरों की टक्करों की मार खाकर भी वे अधिक नहीं हिलते इधर भारत को आने जाने वाले जहाज़ों का वज़न अधिक से अधिक बारह हज़ार टन होता है। इसका कारण यह है कि इन्हें स्वेज़ की तंग नहर पार करनी पड़ती है। पर अटलांटिक महासागर पर चलने वाले जहाज़ों का वज़न साठ साठ हज़ार टन तक का होता है। वे जहाज़ ख़ासे महल से होते हैं। इनमें आनन्द की सब सामग्री और सारे सामान प्रस्तुत रहते हैं। स्नान करने के लिये सुन्दर कुण्ड और सब लोगों के एक साथ मिलकर खाने के लिए सुहावना बड़ा कमरा होता है। सभा, सङ्गीत तथा नाटक इत्यादि के लिए तरह तरह के खेलों की और और सामग्री भी उपस्थित रहती हैं। परन्तु तूफ़ान के समय ये आनन्द की सब चीज़ें व्यर्थ हो जाती हैं। पलंग पर लेटे रहने के अतिरिक्त किसी भी बात की सुध नहीं रहती। अच्छी अच्छी खाने की चीज़ें एक ओर और खेलने की चीज़ें दूसरी ओर पड़ी रहती हैं, उन्हें कोई नहीं पूछता।

जाड़े के बाद वसन्त-ऋतु में इंगलेंड और अमरीका के बीच एटलांटिक महासागर की यात्रा बड़ी जोखिम की रहती है। जाड़े के दिनों में उसके उत्तर में सारा पानी जम कर बर्फ़ का पहाड़ सा बन जाता है। बसन्त आने पर वही पहाड़ टूट

कर कई भागों में बँट जाता है। फिर ये छोटे पहाड़ समुद्र गर्भ पर तैरते हुए दक्षिण की ओर समुद्र की लहरों के साथ बह आते हैं। दूर से यह धुआँ सा दृष्टिगोचर होती है जिससे आने जाने वाले जहाज़ों को कुहरे का भ्रम होता है और अपनी तेज़ चाल के कारण जहाजों की इस बर्फ़ के पहाड़ से टक्कर हो जाती है, जिससे वे टुकड़े टुकड़े होकर डूब जाते है। पाठकों को अभी तक स्मरण होगा कि टाइटानिक नामक साठ हज़ार टन वज़न का एक बड़ा भारी और नया जहाज़ किस प्रकार अपनी प्रथम यात्रा ही में इस बर्फ़ के पहाड़ से टकराकर चूर हो गया था और अपने सारे कीमती माल और यात्रियों के सहित रसातल को पहुँच गया था।

गत योरोपीय महायुद्ध के समय खास कर समुद्र की यात्रा बड़ी भयंकर बन गई थी। जर्मनी के पनडुब्बी जहाज़ों ने (सबमेरीन) जहाज़ी यात्रियों की नाक में दम कर दी थी। वे बिना किसी सोच विचार के जो जहाज़ मिलता उसी को डुबो देते थे। इसका कारण उनका यह सन्देह था कि यात्री-जहाज़ों के द्वारा बारूद तथा सिपाही छिपा कर भेजे जाते हैं। अतएव जर्मन लोग इनके साथ निर्दोष यात्रियों को भी समुद्र के नीचे पहुँचाकर रसातल का मज़ा चखा देते थे।

मेरे एक मित्र सात वर्ष के बाद अमरीका से अपने देश को लौट रहे थे रास्ते में वे इंगलैंड में उतर पड़े—बड़े सोच विचार के बाद वे फ्रांस आने को एक जहाज़ पर बैठे, परन्तु रास्ते ही में

उनके जहाज़ को एक सबमेरीन ने ऐसी टक्कर मारी कि उनका जहाज़ चकना चूर हो गया और तमाम यात्री अपने जीवन से सदैव के लिए हाथ धो बैठे। मेरे मित्र की लाश दूसरे दिन इङ्गलैंड के किनारे पर मिली। हम लोग उनकी लाश लन्दन ले आये और गोल्डर्स ग्रीन के स्थान पर उसका दाह-कर्म किया गया।

इसी प्रकार एक दूसरे मित्र सिटी आव् बरमिंघम नामक जहाज़ से देश का छः वर्ष बाद अपने तमाम सामान के साथ वापस आ रहे थे। रास्ते में मार्सेल बन्दर के निकट सबेरे के समय जर्मन की एक सबमेरीन ने जहाज़ को एक ऐसी टक्कर दी कि वह थोड़ी देर में अपने सारे साज सामान के साथ समुद्र के नीचे जा रहा। मेरे मित्र को सौभाग्यवश जहाज़ की एक नाव मिल गई थी। अतएव वे उसी का सहारा लेकर पचास घंटे तक बिना अन्न जल समुद्र पर उतराते रहे। दूसरे जहाज़ ने पहुँच कर उनको बचाया। मिस्र देश में उतरने पर उनके शरीर पर उनका कोई वस्त्र नहीं था।

ऐसे ही विकट समय में, मुझे भी इङ्गलैंड से स्वदेश को लौटना पड़ा था। परन्तु मैंने दक्षिण अफ्रीका होकर आने का निश्चय किया। इधर भी मेरे जापानी जहाज़ का पीछा एक सबमेरीन ने किया. किन्तु भाग्यवश बड़ी चतुराई से हमारे जहाज़ का कप्तान अपने जहाज़ को ले भागा। रास्ते में डूबे हुए जहाज़ों के सामान बहुत नज़र आये थे और कुछ लाशें भी उतराती हुई देख पड़ी थीं।

ये सब विपत्तियाँ होते हुए भी समुद्र यात्रा बड़ी रमणीय और स्वास्थ्यदायक होती है। समुद्र से निकल कर ओज़ोन वायु बड़े बड़े रोगों को दूर करती है। समुद्र-यात्रा भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न जातियों और वस्तुओं का परिचय कराती है और ज्ञान की वृद्धि करती है। इसलिए यदि अवसर मिले तो इन तमाम आपत्तियों के होते हुए भी भारत के नवयुवकों को समुद्र-यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

—जगन्नाथ खन्ना

अभ्यास

१—समुद्र की यात्रा क्यों लाभदायक है ?

२—सिटी आव् बरमिङ्गम नामक जहाज़ से कौन यात्रा कर रहा था और उसका क्या नतीजा हुआ था ?

३—जाड़े में इङ्गलेण्ड से अमेरीका जाते समय किस बात का डर रहता है ?

४—शब्दार्थ लिखो—
दृष्टिगोचर, रसातल, सहानुभूति, औषधि, गर्भ, प्रस्तुत।

४१—गोवर्द्धन-धारण

(१)

एक बार नन्द आदि गोपों ने कृतज्ञता से;
व्रज में सजाये साज सारे इन्द्रयाग के।
किन्तु लीलाशील व्रजराज के वचन मान,
पूजा गिरि गोवर्द्धन इन्द्र याग त्याग के॥

मान अपमान क्षुब्ध शक्र के सहस्र नेत्र,
लाल लाल होकर अँगारे बने आग के।
दीखा उस काल में कराल ज्वाल-जाल मानों,
जलता विशाल कञ्ज-कानन में जाग के॥

(२)

पावश निशा में ज्योतिरिङ्गणों से शाल-तुल्य,
होकर सुशोभित सहस्रनेत्र रोष से।
नीर भरे मेघों को बुलाकर समस्त शीघ्र,
बोला यों उन्हीं के से गँभीर धीर घोष से।
होकर मदान्ध-मूढ़ गोपों ने हमारा भाग,
गिरि को दिया है एक बालक के दोष से।
प्रलय बिना ही अभी प्रलय मचाओ सभी,
जाओ वेग व्रज को बहाओ वारि-कोष से॥

(३)

पाकर सुरेश के निदेश को अशेष मेघ,
आये व्रज देश-मध्य गज मतवाले से।
छाये व्योम बीच सूर्य्य सोम को छिपाये हुए,
तान पवमान ने वितान दिये काले से।
दिन का विनाश हुआ रात का विकाश मानो,
दीखे ठाठ बाट हाट घाट के निराले से।
होने लगा जल से प्रपूर्ण शीघ्र सारा थल,
फूट पड़े इन्द्र के मलीन-मन-छाले से॥

(४)

करते हुये सिंहनाद-रूप घार शब्दों को,
बजती यथैव नई दुन्दुभी मढ़ाई है।
वायु के विमान पर मान भरे बैठे हुये,
शम्पा-रूप कोष की करालता बढ़ाई है।
घेर ब्रज मण्डल को बीर नीरदों ने आज,
तारों के समान नीर-धारा आन ढाई है।
मानों रोष-घोष कर द्वेष से तमोगुण की,
तोप-पूर्ण सत्व गुण-कोष पै चढ़ाई है॥

(५)

आने लगीं बन से रँभाती हुईं गायें शीघ्र,
भागे गोपवृन्द वेग सारे सराबोर से।
कान पड़ी बात भी सुनाई पड़ी नेक नहीं,
मेघों ने मचाया शोर ऐसे बड़े ज़ोर से।
दौड़े खेल छोड़ छोड़ बालक जो ठौर ठौर,
दीखे वीथियों में बहे बारि की हिलोर से।
मार कर कूक मानों मोरनी भी प्यार भरी,
बोली बार बार छिपने को कहीं मोर से॥

(६)

काले काले बारि वाले मेघों में प्रकाश छिपा,
मानो ब्रज अन्धकार सिन्धु में समा गया।

बार बार बाड़व-शिखा की भाँति भीतिकर,
अम्बर में दामिनी-विभास भूरि भागया।
होने लगी घोर नीर-वर्षा व्रज बोरने को,
'त्राहि त्राहि त्राहि' शोर चारों ओर छागया।
धीरज समीर के झकोरों में सभी का उड़ा,
पाहि पाहि प्रलय-प्रसङ्ग पास आ गया॥

(७)

अच्युत! अनेक बार की है ज्यों दया की दृष्टि,
त्यों ही आज नेक उसी दृष्टि से निहार लो।
कौन है सहायक हमारा और चक्रपाणे!
शरण तुम्हारे ही सदा से हैं विचार लो।
हा हा हा! अनाथों को सनाथ करने के लिये,
शीघ्रता के साथ नाथ! हाथ को पसार लो।
डूबते हैं दीन दीनबन्धो! अघ-सिन्धु-मध्य आज,
चाहो जो उबारना तो वेग ही उबार लो॥

(८)

डूब रही है पुण्य-भूमि आज व्रजराज! देखो,
कैसे हा! बचेगी जो न आप ही बचाओगे।
ध्वंस हुआ जाता सौरभेयी-बंश कंसरिपो,
नष्ट हुआ गोकुल क्या दूसरा बसाओगे।
जाते अहो! मारे ये तुम्हारे सारे प्यारे जन,
माधव! मुरारे! कैटभारे! अब आओगे?

देर जो लगाओगे न पाओगे किसी को यहाँ,

पीछे पछताओगे, कठोर कहलाओगे ॥

(९)

विविध प्रकार व्रज वासियों की वाणियों को,

देख के विलाप-लीन कातर कलत्र सा।

द्रवित हुये हैं नन्द-नन्दन अमन्द मानों,

खोल दिया दिव्य दया-दान का सुसत्र सा।

करि-सम झूम झुक बाईं छिगुनी पै अहा!

गोवर्द्धन गोत्र उठा रक्खा पद्म-पत्र सा।

आती बारि-वृष्टि व्योम से थी दृष्टि यत्र यत्र,

तान दिया तत्र तत्र एक सृष्टि-छत्र सा॥

(१०)

दूर हुई आपदा अशेष व्रज मण्डल की,

बलि करि हारी मेघ-मण्डली बिचारी है!

चारों ओर फैली ध्वनि हर्ष और विस्मय की,

देखो, धरा मध्य दिव्य-दृश्य मनोहारी है।

शैल तो उठाये हरि आप करि-कञ्ज मानों,

जाती मरी बोझ से यशोदा मातु प्यारी है।

दवि मति जाय मेरो वारो कीन्ह प्यारो हाय!

नेक न सहारो, धारो भारो भूमि धारी है॥

(११)

मान मघवा का हरने को, भरने को मोद,

निष्फल प्रहार करने को मेघ-माला के।

गोबर्धन-धारण

रक्खा गिरि नख पै किशोर श्याम सुन्दर ने,
भक्तों को पिला के पूर्ण प्याले हर्ष हाला के।

* * * *
* * * *

(१२)

हलधर बन्धु को उठाये गिरिराज सुन,
आई वृषभानुजा मराल की सी चाल से।
देख सखियों के सङ्ग सुन्दर लता सी उसे।
मुग्ध गिरिधारी हुए चञ्चल तमाल से।
डगता जान कम्प से करस्थ शैल क्रीड़ा का,
व्रीड़ा वश बन्द किये लोचन विशाल से।
ऐसे घनश्याम का पवित्र स्वेद नीर जाल,
त्राण करे सर्वदा कराल काल ज्वाल से॥

(१३)

बोले गिरिधारी राधिका को देख ललिता से,
"तू भी दे सहारा सखी शैल बड़ा भारी है।"
सुन ब्रज राज की रसीली उक्ति युक्ति भरी,
हँस वह बोली गिरा नित्य ही सो न्यारी है।
"गर्व न जनाओ श्याम! वाम कर शैल धरे,
राधिका का अङ्ग है सो शक्ति क्या तुम्हारी है?"

ललिता की चातुरी से लज्जा और हर्ष भरा,
युगल किशोर जोड़ी रक्षक हमारी है॥

(१४)

सात दिन बीते वृष्टि होते हुये अम्बर से,
हाथ पर गोपीनाथ भूधर धरे रहे।
बाँका हुआ बाल भी किसी का नहीं वारिदों से,
मानों वृक्ष आदि सभी हर्ष से हरे रहे।
हो कर तब होश में सुरेश पड़ा पैरों में,
दीन उसे देख आप रोष से परे रहे।
धन्य हैं वे सज्जन शिरोमणि प्रणाम योग्य,
ऐसे भगवान की जो भक्ति से भरे रहे।

(१५)

चरित विचित्र हैं तुम्हारे रमानाथ! सारे,
जगत पिता हो कभी नन्द के दुलारे हो।
तस्कर कभी हो नवनीत के विनीत कभी,
हिम के फुहारे कभी आग के अंगारे हो।
निर्गुण कभी हो कभी सगुण अनेक एक,
योगियों के ईश कभी गोपियों के प्यारे हो।
नटखट पूरे नटराज हो! कहाँ लो कहूँ,
मन की छिपी है क्या मन में हमारे हो॥

—मैथिली शरण गुप्त

अभ्यास

१—कृतज्ञता, शक्र, कञ्ज, ज्योतिरिङ्गणों, शाल, पवमान, मलीन मन छाले से, यथैव, शम्पा, स्तवगुण, सौरभेयी, गोत्र, ओजवाली शब्दों के अर्थ लिखो।

२—इन्द्र के कोप करने का कारण अपनी सरल भाषा में लिखो।

३—इस कविता को पढ़ कर कृष्ण के हृदय का कौन आदर्श गुण तुम्हारी समझ में आया उनका वर्णन स्पष्ट रूप से करो।

४२—महर्षि दधीचि

(१)

दधीचि एक बड़े प्राचीन महर्षि हैं। पुराणों में इनका उल्लेख अवश्य है, पर कोई विशेष इनका परिचय नहीं है। सिर्फ़ इनके एक कार्य का परिचय मिलता है। कहीं कुछ कम है और कहीं अधिक। उस कार्य के अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ मालूम नहीं, ये किस कुल में उत्पन्न हुए थे, कहाँ कहाँ इन्होंने तपस्या की थी, किसी राजा को यज्ञ कराया था कि नहीं, किस से इन्होंने शास्त्र अध्ययन किया था, किस से इनका प्रेम था और किस से द्वेष आदि बातों का कहीं उल्लेख नहीं।

एक घटना के बल पर किसी का सदा के लिए प्रसिद्ध हो जाना आश्चर्य की बात है। लोगों के लिए बड़ी बड़ी पुस्तकें बनती हैं, सालों और महीनों की कौन कहे दिनों घंटों और मिनटों तक की बातें लिखी जाती हैं, मित्रों का परिचय दिल खोल कर दिया

जाता है। फिर भी उनका नाम अमर नहीं रहता। उनकी मृत्यु हुई और दो तीन वर्ष बीतते न बीतते लोग उन्हें भूल जाते हैं, घटनाओं की माला से लबालब भरी वह पुस्तक एक काम नहीं आती। वह पुस्तक सामने पड़ी रहती है, फिर भी लोग उस पुस्तक के नायक का स्मरण करना कर्त्तव्य नहीं समझते। ऐसी दशा में दधीचि को लोग नहीं भूलते, जिनके बारे में कहीं दस और कहीं पचीस पंक्तिमात्र लिखी हैं; यह सचमुच आश्चार्य की बात है और आनन्द की भी।

स्मृति के लिए घटना में महत्व होना चाहिए। जिस जीवन से किसी एक भी महत्व पूर्ण घटना का सम्बन्ध हो जाता है वह सदा के लिए अमर हो जाता है, चाहे उसके लिए कुछ लिखा जाय या न लिखा जाय, चाहे उसका जीवन चरित्र चित्र के साथ प्रकाशित किया जाय या न किया जाय। महर्षि दधीचि के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटना भी ऐसी ही है, यह बड़ी ही महान् है, अद्भुत है, अनुपम है।

मनुष्य अपने गुणों के कारण अमर होता है, और उन गुणों में त्याग सब से बड़ा गुण है। त्याग भी कई प्रकार का होता है। त्याग में भी छोटाई बड़ाई हुआ करती है। जिस त्यागी के त्याग का विशेष सम्बन्ध प्रियता से होता है, अर्थात् जो सब से प्रिय वस्तु का त्याग करता है वही त्यागी श्रेष्ठ समझा जाता है और उसका त्याग भी अन्य त्यागों से श्रेष्ठ होता है इसमें सन्देह नहीं।

रुपये पैसे का त्याग कोई बड़ी बात नहीं। पर जिस वस्तु का त्याग कठिन है उसका यदि कोई त्याग करे, तो अवश्य ही महान् है और उसका त्याग भी महान् है।

मनुष्य अपने सुख के लिए सारे प्रयत्न करता है, और वह सुख शरीर के द्वारा वह भोगता है। महर्षि दधीचि के सामने आकर इन्द्र ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—महाराज, देवगण बड़ी विपत्ति में हैं, कृपा कर उनकी रक्षा कीजिये, देवताओं की रक्षा के लिए आपके शरीर की हड्डी की आवश्यकता है।

दधीचि ने इन्द्र की प्रार्थना सुनी और हँस कर कहा—सांसारिक जीवों की ममता शरीर ही पर हुआ करती है और वही तुम माँगते हो। खैर मुझे शरीर से प्रेम नहीं, तुम यदि इसे चाहते हो, इससे यदि तुम्हारा लाभ हो तो हाज़िर है। इस त्याग का क्या मूल्य है ?

(२)

महर्षि दधीचि किसी वन में रहा करते थे, वहाँ इनका सुन्दर आश्रम बना था। आश्रम के आस पास की भूमि वृक्षों और लताओं से हरी भरी थी, पास ही एक नदी थी। उस आश्रम में और भी अनेक शिक्षार्थी ऋषि रहा करते थे। इन सब का काम था अध्यात्म चिन्तन, शास्त्रों का पठन पाठन तथा बाक़ी समय संसार के छल कपट से अनभिज्ञ पशुओं से क्रीड़ा। दधीचि वहाँ के कुलपति थे। वह एक मनोहर दृश्य था; जिसकी हम लोग इस समय कल्पना भी नहीं कर सकते।

महर्षि दधीचि की आयु बहुत बीत गयी थी. इन्होंने अनेक अध्यात्म विषयों का पता लगाया था. ये अपने समय के ऋषि महर्षियों में सर्वश्रेष्ठ थे। अन्य अन्य स्थानों के भी ऋषि महर्षि इनके यहाँ समय समय पर आया करते थे और अपना अपना सन्देह मिटाया करते थे। महर्षि दधीचि को इस काम में बड़ा आनन्द आता था। ये लोगों के सन्देहों को दूर करने के लिए सदा तैयार रहा करते थे। इस कारण दूसरे भी इनसे बड़ा प्रेम करते थे, और इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा करते थे। एक दिन महर्षि दधीचि के आश्रम पर ऋषि महर्षियो की भीड़ लगी हुई थी, देवासुर संग्राम पर विचार हो रहा था—देवताओं को असुर व्याकुल कर रहे हैं, देवताओं से कुछ करते धरते नहीं बनता, देवगुरु वृहस्पति का ज्ञान कुंठित हो गया है, इन्द्र का पराक्रम इस समय बेकार है, देव सेना निकर्म्मी हो रही है, देव गण भस्म हो रहे हैं, भय के मारे खाना पीना भूल गये हैं।

एक ऋषि ने पूछा—ऐसा क्यों हो रहा है ?

दूसरे ऋषि ने कहा—दुर्बल को बली दबाता है. यह साधारण नियम है। असुर बलवान् हैं।

इसी प्रकार के तर्क वितर्क वहाँ हो रहे थे. कोई कुछ कहता था और कोई कुछ। महर्षि दधीचि चुप थे। वे उनकी बातें सुन रहे थे कि नहीं यह भी कुछ स्पष्ट रीति से नहीं कहा जा सकता। उनकी चेष्टा से मालूम होता था कि वे कुछ सोच रहे हैं। वहाँ उस समय जो बैठे थे उनका उधर ध्यान न था वे तर्क वितर्क में

ही लीन थे। उसी समय सहसा लोगों के सामने एक वृद्ध ब्राह्मण उपस्थित हुआ। लोगों ने उसका स्वागत किया। महर्षि ने तीखी नज़र से उसकी ओर देखा। वह घबड़ा गया और खड़ा होकर हाथ जोड़ कर बोला—महाराज, मैं इन्द्र हूँ, ब्राह्मण वेश में मैं आपकी सेवा में इस लिये उपस्थित हुआ हूँ कि मुझे कुछ आप से माँगना है; अतएव माँगने के उपयुक्त यह रूप मैंने धारण किया है।

महर्षि ने कहा—इन्द्र, तुम छल के लिये प्रसिद्ध हो, तुम अपनी इसी छल प्रधान नीति के कारण इस समय दुःख उठा रहे हो और तुम्हारी इस अयोग्यता का फल समस्त देवों को भोगना पड़ रहा है। यह तुम को निश्चयरूप से जान लेना चाहिए कि छल में विजयी होने की शक्ति नहीं है, तुम इतने समय से देव-राज्य का पालन कर रहे हो, तुम्हें इस स्पष्ट सत्य का अनुभव हो जाना चाहिए था, पर दुःख है कि वह अभी नहीं हुआ।

इन्द्र ने कहा—महाराज, नीति मेरी नहीं है, किन्तु वह बृहस्पति की है। मैं बृहस्पति की नीति को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न भर सक करता हूँ। ऐसी दशा में नीति के कारण जो असफलता होती है, उसका दोष मुझ पर नहीं हो सकता।

महर्षि ने कहा—इस सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं है, पर आपको इस से यह न समझ लेना चाहिये कि मेरी दृष्टि में आप नीति के सम्बन्ध में निर्दोष साबित हो गये। आपकी इन बातों का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है, मैं पहले जैसा आपको

दोषी समझता था वैसा ही अब भी समझता हूँ। आपका यह कहना सच है कि आप बृहस्पति की आज्ञाओं का पालन करते हैं, उनकी बतलाई नीति पर चलते हैं। पर इससे क्या हुआ। चलने वाले तो आपही हैं। बृहस्पति चलाने वाले हैं; वे चलने वाले में जैसा बल देखेंगे, उसकी जैसी प्रवृत्ति देखेंगे, उसी प्रकार उसको चलने के लिए भी कहेंगे। सभी मनुष्य सब उपायों का अनुष्ठान नहीं कर सकते। अतएव सभी के लिए एक समान उपदेश भी नहीं हुआ करता। इस बात को समझना संचालक की ख़ूबी है। इस बात को समझ कर जो उपदेश देता है, उसका उपदेश कार्यकारी होता है, उसका उपदेश सार्थक है, वह अपने उपदेश द्वारा अपने शिष्य का कल्याण कर सकता है।

इन्द्र चुप रहे, उन्होंने कुछ कहने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। यह देखकर महर्षि दधीचि ने कहा—कहो क्या कहना चाहते हो, कोई भय नहीं। इन्द्र ने कहा—महाराज, आप को मालूम ही है कि इस समय देवताओं पर कैसी विपत्ति पड़ी हुई है, वे इस समय कितने दुःख भोग रहे हैं। मेरा बल व्यर्थ हो गया, बृहस्पति की नीति से भी कोई फल नहीं निकलता। हम सब लोग हताश हो कर ब्रह्मदेव की शरण गये थे, उनसे हम लोगों ने अपने दुःख सुनाये और उनके दूर करने में सहायता माँगी। ब्रह्मदेव की हम लोगों ने बड़ी स्तुति की, वे प्रसन्न हुए और उन्होंने उपाय बतलाया। उसी के लिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ।

इतना कह कर इन्द्र चुप हो गये। महर्षि भी चुप थे। इसी तरह कुछ समय बीत गया, पर इन्द्र न बोले। तब महर्षि ने कहा—कहिए, आप को मुझ से इस सम्बन्ध में क्या कहना है। आप संकोच क्यों करते हैं, जो कुछ आप कहना चाहते हों निःसंकोच होकर कहें।

इन्द्र ने कहा—महाराज, मैं आप से कुछ प्रार्थना करने आया हूँ। देवताओं के कल्याण के लिए ब्रह्मदेव की आज्ञा से मैं आप से कुछ माँगना चाहता हूँ। आप महर्षि हैं, आपको सब विषयों का यथार्थ ज्ञान है, आशा है आप मेरी प्रार्थना पूर्ण करेंगे, आप मुझे हताश न करेंगे।

महर्षि ने कहा—आप जो कुछ कह रहे हैं वह अपने विचार से ठीक ही कह रहे हैं, उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है, पर आप की प्रार्थना क्या है, यह अभी तक मुझे मालूम न हुआ। आप असली बात छिपाते हैं और इधर उधर की अनेक बातें करते हैं। ऐसी दशा में मैं अपने कर्तव्य का निर्णय कैसे कर सकता हूँ।

इन्द्र ने कहा—महाराज, ब्रह्मदेव ने कहा है कि वृत्रासुर का नाश तुम लोगों के पराक्रम से नहीं हो सका। उसके नाश का एक ही उपाय है और वह यह है कि महर्षि दधीचि की हड्डी का वज्र बनाया जाय और इन्द्र उससे युद्ध करें, तब वह पराजित होगा, नहीं तो नहीं। इसी कार्य के लिये मैं आया हूँ। आप महर्षि हैं, आप ही लोगों के सहारे देवताओं की स्थिति है।

महर्षि ने कहा—देवराज इन्द्र, आपके बिना कहे भी मैं आपके आने का उद्देश्य जानता था। पर मेरी इच्छा थी कि वह मैं आपके मुख से स्पष्ट सुनूँ। पर वह मेरा मनोरथ पूरा न हो सका। मैंने बहुत प्रयत्न किया, कई बार पूछा, तब जाकर आपने कहीं कहने की कृपा की सो भी घुमा फिरा कर, साफ़ साफ़ नहीं। आप लोगों का स्वभाव ही है, राज्य-प्रकरण के संसर्ग से लोगों की प्रकृति भी वक्र हो जाती है, उनकी बातें भी वक्र हो जाती हैं। आप तो देवराज हैं, फिर इन बातों की आप में कमी कैसे रह सकती है! साफ़ बातें करने की आदत आप कहाँ से पा सकते हैं। अच्छा जाने दीजिए। उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं। हाँ एक इच्छा थी, चाहता था कि आपके मुख से साफ़ साफ़ बातें सुनकर एक नई बात समझूँ। राज-काजियों की प्रकृति में बदलाव देख कर प्रसन्न हो लूँ! पर चिन्ता नहीं, क्या सभी की सभी इच्छायें पूरी होती हैं! देवराज, आप जो हमारे शरीर की हड्डियाँ माँगने आये हैं, वह अपने कल्याण के लिये। आप मेरी हड्डियों से वज्र बनाना चाहते हैं, और उस वज्र से शत्रु का नाश कर देवताओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं, अपना पद कायम रखना चाहते हैं। कहिए यही बातें हैं न? तब आप को सोचना चाहिये था कि जिस प्रकार आप को अपना कल्याण प्रिय है, उसी तरह वह दूसरों को भी प्रिय है। लौकिक कल्याण भोगने और पारलौकिक कल्याण प्राप्त करने का साधन यह शरीर ही है, यह बात तो आप को मालूम

ही है। ऐसी दशा में आप अपने कल्याण पर दूसरे के कल्याण का बलिदान क्यों चढ़ाना चाहते हैं ?

इन बातों को सुनकर इन्द्र हताश हो गये, वे कुछ बोल न सके। महर्षि ने पुनः कहा—ये बातें मैं अपने सम्बन्ध में नहीं कह रहा हूँ। आप यह न समझिये कि इन बातों को कह कर मैं आपको निराश कर रहा हूँ। वे बातें अभी अलग हैं उनका उत्तर मैं थोड़ी देर के बाद देता। पर मैं देखता हूँ कि आप घबड़ा गये हैं। अतएव अब मैं योग क्रिया के द्वारा अपना शरीर छोड़ता हूँ, आप हड्डियों को ले लीजियेगा, और उनसे अपना मनोरथ सिद्ध कीजियेगा। महर्षि ने ऐसा ही किया, और यही वह एक घटना है, जिसके कारण महर्षि दधीचि मर कर भी अमर हैं।

—चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य

अभ्यास

१—महर्षि दधीचि का नाम जिस घटना के कारण अमर है, उसका वर्णन अपनी भाषा में करो।

२—तुमको जिस अन्य अमर पुरुष की कथा मालूम हो उसका वर्णन उस घटना के सहित जिसके कारण वह अमर हुआ है, लिखो।

३—तर्क वितर्क, वक्र, हताश इन शब्दों का प्रयोग अपने बनाये वाक्यों में करो।

परिशिष्ट (१)

द्वितीय भाग

शब्दार्थ तथा पाठ सहायक बातें

पाठ १—भव=संसार। नेति=न+इति, अन्त रहित, अनन्त। अगोचर=जो दिखाई न दे। आछत=होते हुए, रहते हुए। बन्दी=भाट। कव्य=नैवेद्य, देवता की बलि या भेंट। कव्य=पितरों को दिया जाने वाला अन्न। गेय=गाने योग्य। अघिन=पापियों। पोखि=पोषण करके।

" २—शिष्ट=सदाचारी, सज्जन। व्यञ्जित=प्रकाशित, मालूम। विगतस्पृह=लोभरहित, त्यागी। योर्स=आपका। फेतफुल=विश्वासनीय। विधायक=निर्णय करने वाला, सिद्धान्त बनाने वाला। मृग-चर्म परिच्छन्न व्याघ्र=हिरन का चमड़ा ओढ़े बाघ, बाहर से अच्छा रूप भीतर कपट और क्रूरता।

" ३—"जिसको......आधा संसार" का भावार्थ—आधा संसार अर्थात् चीन, जापान और श्याम आदि अब तक बौद्ध धर्म के मानने वाले हैं। राजा अशोक ने समुद्र-पर्य्यन्त पृथ्वी विजय की थी अपनी इतिहास पुस्तक देखो। तान सेन ग्वालियर के बहुत प्रसिद्ध गायक थे।

" ४—मशीन=यन्त्र, कल। फेशन=बनाव चुनाव, तर्ज़।

पाठ ५—स्वार्थ-तम = स्वार्थरूप अन्धकार। सुसमीर = सुन्दरवायु। पल्लव = पत्ता। स्वत्व = अधिकार।

” ६—वैज्ञानिक अन्वेषण = विज्ञान सम्बन्धी खोज। अक्षय = न नाश होने वाला। युक्ताहारविहार = योग्य भोजन और उचित विहार। धूम्रपान = सिगरेट और हुक्का आदि पीना। मदिरा = शराब। निरामिष = माँस रहित। सर्व रोगे मलाश्रये = मल के दोष से ही सब रोग होते हैं।

एडीसन—टामस एल्वा। एडीसन सन् १८४७ ई० में अमरीका के मिलन नगर में उत्पन्न हुए थे। बचपन में आपने तार घर में नौकरी की और वहाँ तार का काम सीखा विद्युत् सम्बन्धी आपने बहुत आविष्कार किये और फोनोग्राफ़ का आविष्कार आपने सन् १८७८ में किया जिससे यह संसार प्रसिद्ध हुए।

हेनरी फ़ोर्ड—अमरीका की फ़ोर्ड कम्पनी के स्वामी हैं। यहाँ जो फ़ोर्ड मोटरें बिकती हैं वे आपके ही कारखाने की बनी होती हैं। इन्होंने साधारण अवस्था से इतनी उन्नति की है कि आज कल संसार के धनियों में प्रसिद्ध हैं। ये दानी भी बहुत बड़े हैं। इस समय बुढ़ापे की अवस्था में भी पूर्ण कार्य करते हैं।

” ७—बलवर्द्धक = बल बढ़ाने वाला। समाधि = ध्यान, योग की क्रिया। लबार = झूठे। वियुक्त = सहित। प्रतिभा = असाधारण बुद्धि। किरीट = मुकुट। कृपाण = तलवार। अवनी = पृथ्वी। अविरुद्ध = अनुकूल। जलयान = नौका। अपान = पाद, गुदास्थवायु। उदान = प्राण वायु, कण्ठस्थ वायु। व्यान = प्राण।

पाठ ८—उद्गम = निकाश। पुरातत्वज्ञ = प्राचीन तत्वों के खोजी। शत = सौ। योजन = ४ कोस। नय = नीति। गपोड़बाज़ी = गप, झूठी बात। अरण्य = जंगल। गुलेबकावली = बकावली के फूल। पार्वत्य = पहाड़ी।

" ९—विश्वपारावारा = संसार समुद्र। प्रखरतर = बहुत तेज़। गिरि-तुल्य = पहाड़ के समान, बहुत बड़ा। अधखिले = बालपन। व्योम = आकाश। सान्त्वना = धैर्य्य, सन्तोष।

" १०—कर्ष = निरोध, जोश। धूल में = व्यर्थ। शिष्टाचार = सज्जनतायुत आचरण। समवयस्क = बराबर की आयु के। श्रोता = सुनने वाला। वक्ता = बोलने वाला। उपालम्भ = निन्दा, शिकायत। आत्मप्रशंसा = अपनी तारीफ़। सम्भाषण = बातचीत।

" ११—प्रतिमा = मूर्ति। ध्रुव = अटल। संयत = सीमा के अन्दर। परिकर = कमर। अतीत = भूतकाल, बीता हुआ समय। भव पाश = संसार का फंदा। काय = शरीर। प्रभुरति-सूत्र = भगवान् के प्रेम का तागा।

" १२—पटल = पर्त, तह। आयात = आगत, आमदनी। उत्पादन-शक्ति = पैदावार की ताक़त, उर्वरा शक्ति। निर्यात = निकासी। कायात्मिक = शरीर और आत्मा की। युनाइटेड्स्टेट = अमेरिका का एक प्रान्त।

" १३—बालार्क = बालसूर्य। सर्वाग्र = सब से आगे। कमनीय = सुन्दर। आलोक = प्रकाश। तटिनी = नदी। रश्मि = किरण। इन्द्र प्रभा = इन्द्र धनुष की चमक।

" १४—नैसर्गिक = प्राकृतिक। चित्ताकर्षक = मन को खींचनेवाले। आजानुबाहु = लम्बी भुजायें। तूल = लम्बी। हारीज़ंटल बार = विदेशी व्यायाम की वस्तु जिसमें दो खंभों के बीच

में एक लोहे की छड़ ६ फ़ीट ऊँचाई पर लगी रहती है। उसी पर चढ़कर व्यायाम किया जाता है। संहार= नाश। कालनेमि=एक राक्षस था जिसको हनूमान जी ने मारा था। बाहुल्यता=अधिकता।

पाठ १५—लोल=चंचल। सोपान=सीढ़ी। त्रिविध भय=दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों का डर। मज्जन=स्नान। ऐरावत=इन्द्र का हाथी जो समुद्र से निकला था। पवि=वज्र। ललकि=उत्कण्ठित होकर। धवल=श्वेत वर्ण।

" १६—"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"=बालपन से ही अच्छे गुण दिखलाई देने लगते हैं। स्मृति=धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य आदि।

" १७—अपलाप=असत्य। अभिशाप=शाप, दोष। षड्यंत्र= जाल। उपाधि=पदवी। चर्च=गिर्जाघर। कुत्रापि= कहीं भी। स्वच्छन्द=स्वाधीन।

" १८—लाट=खंभा, स्तम्भ। लायब्रेरी=पुस्तकालय।

" १९—अवधेश (अवध+ईश)=अयोध्या के स्वामी राजा दशरथ। शोच विमोचन=शोच को दूर कर देने वाले। जातक=पुत्र, बालक। मरंद=फूल। भृङ्ग=भौंरा। अनंग=शरीर रहित, कामदेव। लोल=चंचल।

" २०—'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'=अधिकार पाकर सब घमंडी हो जाते हैं। रोब=आतंक। श्लाघनीय=प्रशंसा के योग्य। भृगु—एक मुनि थे, इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनमें कौन बड़ा है। इसकी परीक्षा की थी। ब्रह्मा प्रणाम न करने से, शिव कुछ कहने से क्रोधित हो गये। ये विष्णु के पास गये। विष्णु सो रहे थे। उनकी छाती में ज़ोर से

लात मारी। जिससे वे जग पड़े और उदारता-पूर्वक भृगु से कहने लगे कि आपके पैर में कहीं चोट तो नहीं लगी है? यह भगवान की क्षमा-शीलता का अपूर्व उदाहरण है।

पाठ २१—प्रसिद्ध स्वामी रामतीर्थ जी जब सन्यासी हुए थे उस समय यह कविता बनाई गई थी। लवपुर=लाहौर. महाराज रामचन्द्र के पुत्र लव की राजधानी होने के कारण लाहौर का नाम लवपुर भी है। केतु=ध्वजा, पताका, श्रेष्ठ। रियाज़ी=अंकगणित। रम्य-तटी=सुन्दर किनारों वाली। शिखा-सूत्र=चोटी और जनेऊ। ब्रह्मविद्या=परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान। सत्वर=शीघ्र। अलविदा=रुख़सत, बिदा। परिष्कृत=स्वच्छ, अलंकृत। तड़ित=बिजली। आतपत्र=छाता। श्वापद=हिंसक, भयंकर जीव चीता शेर आदि। तत्पद=उसका चरण।

" २२—कट्टरता=हठीपन। आधुनिक=आज कल की, नवीन। प्राच्य—पूर्वीय। आकृष्ट=खिंचना। भव्य=सुन्दर। नग्नरूप=नंगारूप। आविर्भाव=उत्पत्ति। अभिनव=नूतन, नया। अहनिश=रात दिन।

" २३—मुग्ध=मोहित। प्रशस्त=सुन्दर, विस्तृत। शस्य=अनाज। क्षणभंगुर=क्षण में नाश होने वाला।

" २४—अविरल=लगातार। घन=बादल। आच्छन्न=घिरा हुआ है। शेक्सपियर = बिलायत में एक प्रधान नाटककार हुआ है। अलका=कुबेरपुरी।

" २५—वीथिकायें=गलियाँ। कूल=किनारा। कनकाभिराम=सोनहला सुन्दर मन्दिर।

" २६—श्यामलसस्य=अनाज से भरा श्याम रंग का।

पाठ २७—नैरोग्यकारी = आरोग्यता देने वाली । पारसीक = पारसी जाति की । मरुवासिनी = राजपूताने की, रेतीले प्रान्त की । मदीय—मेरा । तदीय = उसका ।

" २८—सर्वोत्तम (सर्व + उत्तम) = सब से श्रेष्ठ । सर्वाङ्गीन = सब अंगों सहित । विवेक = ज्ञान । समक्ष = सामने । उच्छृङ्खलता = निरंकुशता । आपात = अधःपात, गिराव । कुत्सित = खराब । प्रतिभा = असाधारण बुद्धि । अविनय = धृष्टता, ढिठाई ।

" २९—बल = बलराम । बेनी (वेणी) = चोटी । भ्वैं = भूमि । धनियाँ = धन्य है । पत्याहि = विश्वास करना । रिंगाइ = दौड़ा कर ।

" ३०—विभक्त = बाँटना । रिक्त = खाली । कण्टकाकीर्ण = कांटों से भरा । अतिक्रमण = पार कर जाना । क्रान्ति = उपद्रव, उलट पुलट । स्फूर्ति = फुरण, धड़कन । कट्टर = हठी । पुरातत्ववेत्ता = प्राचीन काल की बातों का ज्ञान रखने वाले । गौण = साधारण । अन्वेषण = खोज । क्षमता = सामर्थ्य, शक्ति । सफलता उनकी चेरी होती है = उन्हें सफलता अवश्य प्राप्त होती है । धैर्यच्युत = धैर्य से गिरना । गवेषणा पूर्ण = खोज तथा छान बीन युक्त । पतञ्जलि = व्याकरण भाष्य कर्ता ऋषि थे । यह चन्द्रगुप्त के पीछे हुए हैं । ईसा से १८० वर्ष पूर्व इनका समय माना जाता है । कपोलकल्पित = बनावटी, मिथ्या, मन गढ़न्त । " धज्जियाँ उड़ा दीं " = असत्य साबित कर दिया, नष्ट भ्रष्ट कर दिया । पाण्डुलिपि = मसविदा, खाका ।

" ३१—नन्दन = इन्द्र की वाटिका । त्वदीय = तेरा । मदीय = मेरा । अध्यात्म = ईश्वरीय ज्ञान । मरुभूमि = राजपूताना ।

चाप = धनुष। मनु = ब्रह्मा के पुत्र और मनुष्यों के आदि पुरुष। मेधावी = बुद्धिमान। स्वकृत्य = अपना कर्म।

पाठ ३२—रसायन = कीमिया। पारस = मणि विशेष जिसको छूने से लोहा सोना हो जाता है। ज्ञानोपार्जन = ज्ञान उत्पन्न करना। प्रतिपादित = जो भली भाँति समझा दिया गया हो, निर्धारित। विस्फोटक पदार्थ = बारुद आदि। कृत्रिम = बनावटी।

" ३३—मसलना = कुचलना। फबन = शोभा। गले का हार = प्यारा। पामाल = पैरों से रौंदना।

" ३४—उद्विग्नता = व्याकुलता। कयामत = प्रलय। कुफ़् = छिपाना। सूफी = वेदान्ती।

" ३५—कंस के निमन्त्रण पर जब यशोदा जी कृष्ण बलराम को नन्द जी के साथ मथुरा भेज रही हैं तब नन्द जी से कृष्ण और बलराम के विषय में कह रही हैं। थाती = धरोहर। खरपवन = तेज़ हवा। दिनकर = सूर्य। म्लान = उदास। धनुख मख = धनुषयज्ञ। रजनि = रात।

" ३६—बिलसैं = शोभा देती हैं। द्रुम = पेड़। पल्लव = पत्ते। चित्र पटी = तसवीर। वितान = चँदोवा। कल = सुन्दर। परेवा = कबूतर। ल्यार = भेड़िया। लास (लाश) = शव। वासना = इच्छा। आतप = गर्मी। कानन = बन। तारका वृन्द = तारागण। अभग्न = पूर्ण। विभ्रम = चक्कर, भूल।

" ३७—खद्योत = जुगनू। मात = हार। सिर रहे नवाई = लज्जित हो रहे हैं। हिमायती = सहायक। गंगोदक = गंगाजल। चोली दामन का साथ = न छूट सकने वाला साथ। एकलिंग = उदयपुर के आराध्य देव, शिव मूर्ति का नाम।

पाठ ३६—वृषभ कन्ध = बैल के से कन्धे। मुनिबसन = छाल के कपड़े। तून (तूण) = तरकस। मार-मद-मोचन = कामदेव के अभिमान को चूर करने वाले। बिलगाउ = अलग करो। बिहाइ = छोड़कर। विपुल = बहुत। अरभक = बच्चा। राकेस = चन्द्रमा। निपट = बिलकुल। खोरि = दोष। कुलिस = वज्र। अयाना = मूर्ख। सरबर = बराबरी। ब्राह्मण के नव गुण—१ पढ़ना २ तप करना ३ सन्तुष्ट रहना ४ क्षमाशीलता ५ जितेन्द्रिय होना ६ ज्ञानी होना ७ दाता ८ दयालुता ९ पढ़ाना। सकाना = भयभीत हुआ।

" ४०—चोपाटी = बम्बई में समुद्र के किनारे का एक स्थान। होश गुम हो जाते हैं = व्याकुलता बढ़ जाती है। उलटी = कै। पनडुब्बी = पानी के भीतर चलने वाले जहाज़ जो नीचे बड़े जहाज़ों को टक्कर मार कर तोड़ देते हैं। नाक में दम कर दी थी = आफ़त कर दी थी।

" ४१—शक्र = इन्द्र। कञ्जकानन = कमल वन। ज्योतिरिङ्गण = जुगनू। सहस्रनेत्र = इन्द्र। सोम = चन्द्रमा। पवमान = वायु, हवा। मलीन मन काले = मैले मन के फफोले। यथैव = जैसे। दुन्दुभी = नगाड़ा। शम्पा = बिजली। बाड़व = अग्नि, ब्राह्मण। अम्बर = आकाश। सौरभेयी-वंश = गायों का कुल। कलत्र = स्त्री। सत्र = घर। गोत्र = पर्वत। यत्र यत्र = जहाँ जहाँ। व्योम = आकाश। तत तत्र = वहाँ वहाँ। भूमि-धारी = पर्वत। मघवा = इन्द्र। हाला = मद्य, शराब। ब्रीड़ा = लज्जा। स्वेद = पसीना। त्राण = रक्षा। शैल = पर्वत। तस्कर = चोर। नवनीत = मक्खन।

पाठ ४२—अध्यात्म-चिंतन = ईश्वरीय ज्ञान का मनन। बृहस्पति = इन्द्र के गुरु। अनुष्ठान = आरम्भ। वृत्रासुर = राक्षस जिसको इन्द्र ने वज्र बना कर मारा था।

परिशिष्ट (२)

कवि-परिचय

गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी-साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म राजापुर ज़िला बाँदा में सं० १५८९ में हुआ था। कोई कोई विद्वान इनका जन्म १५५४ संवत् में भी मानते हैं। इनकी मृत्यु का संवत् १६८० सर्वमान्य है। गोस्वामी जी राम के अनन्य भक्त थे। इनके रामचरित-मानस का मान योरुप तक के बुद्धिमानों ने किया है। भारत में तो इनकी रामायण घर घर में विराजमान है। इनके रामचरित को पढ़ कर अनेक लोगों ने विमल ज्ञान प्राप्त किया है। नके रामचरित-मानस ने इनको सदा के लिये अमर कर दिया । इन्होंने और भी १४ ग्रन्थों का निर्माण किया है।

सूरदास

महाकवि सूरदास हिन्दी काव्याकाश के सूर्य माने जाते हैं। नका जन्म अनुमान से १५४० संवत् और मृत्यु संवत् १६२० माना ाता है। इन्होंने सूरसागर नाम के विशाल ग्रन्थ की रचना की । इनके रचे पदों का गान भक्त लोग बड़े प्रेम से करते हैं। यह हाकवि श्रीभगवान् कृष्ण के परम भक्त थे। ब्रजभाषा के कवियों यह सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू वर्तमान हिन्दी-शैली के आचार्य माने जाते हैं।

इन्होंने अपना तन मन, धन सर्वस्व अर्पण करके हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। हिन्दी सदा इनकी चिर-ऋणी रहेगी। यह सुप्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। इनका जन्म सन् १८५० ई० में हुआ था। बचपन ही से इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। यह गद्य, पद्य और नाटक के लिखने में सिद्धहस्त थे। इसी कारण यह भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किये गये थे। इन्होंने अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना की थी। ६ जनवरी सन् १८८५ को इनकी मृत्यु हुई।

पं० बालकृष्ण भट्ट

भट्ट जी हिन्दी के अच्छे लेखक थे। आप का जन्म प्रयाग में सं० १९०१ में हुआ था। आप संस्कृत, हिन्दी के विद्वान् थे। अँग्रेजी में इन्होंने इन्ट्रेंस तक शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दी-प्रदीप नाम का मासिक पत्र भी यह बहुत दिन तक निकालते रहे। प्रदीप का उस समय हिन्दी संसार में बड़ा नाम था। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें 'सौ अजान एक सुजान' और नूतन ब्रह्मचारी बहुत उत्तम है। १९७१ में आप का देहान्त हुआ।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनका जन्म संवत् १९२२ में हुआ है। इन्होंने हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत भाषा का अभ्यास बहुत अच्छी तरह किया है। हिन्दी के कवियों में इनकी गणना उच्चकोटि के कवियों में है। अँग्रेजी का भी ज्ञान इनको है। बँगला भी अच्छा जानते हैं। इन्होंने लगभग २५ पुस्तकें लिखी हैं। उनमें प्रियप्रवास, ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल विशेष प्रसिद्ध हैं। अब यह सदा

ानून-गो के पद से पेंशन लेकर हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी-अध्यापन का कार्य करते हैं।

पं० श्रीधर पाठक

पं० श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १९१६ वि० में हुआ। यह हिन्दी के उत्तम कवि थे। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे। इन्होंने भारत-गीत, एकान्त वासी योगी, श्रान्त पथिक आदि अनेक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं।

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.